ISSN 2349-1906

साहित्य यात्रा

वर्ष 4 अंक 16 अक्टूबर-दिसम्बर 2018

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

हिन्दी की सुप्रसिद्ध कथा लेखिका ममता कालिया को 'दुक्खम–सुक्खम' के लिए 27वाँ व्यास सम्मान दिया गया। साहित्य यात्रा परिवार की ओर से ममता जी को बधाई।

मंत्रिमंडल सचिवालय राजभाषा विभाग द्वारा हरिवंशराय बच्चन जी के जयन्ती समारोह के उद्घाटन का दृश्य। बाएं से कविवर सत्यनारायण, अध्यक्ष मंत्रिमंडल सचिवालय, राजभाषा विभाग, सुप्रतिष्ठित आलोचक प्रोफेसर बलराम तिवारी, साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र एवं प्रोफेसर डॉक्टर मंगला रानी।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

संपादक
डॉ॰ कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा
साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

सदस्यता फार्म

'साहित्य यात्र' विशिष्ट सदस्यता	:	1100/-
एक वर्ष (4 अंक)	:	400/- (डाक खर्च सहित)
तीन वर्ष (12 अंक)	:	1200/- (डाक खर्च सहित)
संस्थागत मूल्य (3 वर्ष)	:	1100/-
आजीवन सदस्यता	:	11000/-
विदेश के लिए (3 अंक)	:	60 डॉलर

(पटना के बाहर के चेक पर कृपया बैंक कमीशन के 40/- रूपये अतिरिक्त जोड़ दें।)
उक्त दर के अनुरूप मैं चेक / ड्राफ्ट संलग्न कर रहा हूँ। कृपया मुझे ग्राहक बना कर मेरी प्रति निम्न पते पर भिजवाएँ।

नाम :-	पद :-
पता :-	
दूरभाष 1 :	दूरभाष 2 :
शहर :	पिन न० :-
देश :	ईमेल -
संकाय / विभाग / विद्यालय:	

यहाँ से काटिए

भुगतान की जानकारी

नकद/बैंक रकम: रु०..... द्वारा.....

डी0डी0/प्रत्यक्ष हस्तांतरण/चेक/बैंक का नाम :.....

डी0डी/चेक/स्थानान्तरण संख्या :..... दिनांक :.....

दिनांक:		हस्ताक्षर (या पूरा नाम लिखें)	

ऑनलाइन हस्तांतरण विवरण :- साहित्य यात्र, पंजाब नेशनल बैंक, एस.के. पुरी शाखा, पटना-1, खाता क्रमांक- 623000100016263, IFSC- PUNB0623600

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

वर्ष-4 अंक-16 अक्टूबर-दिसम्बर, 2018

परामर्शी

डॉ० सूर्य प्रसाद दीक्षित

डॉ० रामशोभित प्रसाद सिंह

डॉ० संजीव मिश्र

सम्पादकीय सलाहकार

श्री आशीष कंधवे

उप-संपादक

प्रो० (डॉ०) प्रतिभा सहाय

सहायक संपादक

डॉ० सत्यप्रिय पाण्डेय

डॉ० रवीन्द्र पाठक

संपादक

प्रो० कलानाथ मिश्र

साहित्य यात्रा में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखकों के हैं जिनसे संपादक, प्रकाशक, मुद्रक एवं पत्रिका से जुड़े किसी भी व्यक्ति का सहमत होना अनिवार्य नहीं है। सभी विवादों का निपटारा पटना क्षेत्र के अन्तर्गत सीमित है। पत्रिका में संपादन से जुड़े सभी पद गैर-व्यावसायिक एवं अवैतनिक है।

साहित्य यात्रा

साहित्यिक-सांस्कृतिक यात्रा की साक्षी

RNI No. : BIHHINO5272
ISSN 2349-1906

विश्व विद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशित सामग्री के पुनः उपयोग के लिए लेखक,
अनुवादक अथवा **साहित्य यात्रा** की स्वीकृति अनिवार्य है।

संपादकीय कार्यालय
'अभ्युदय'
ई-112, श्रीकृष्णपुरी
पटना-800001 (बिहार)
मोबाइल : 09835063713/08750483224
ई-मेल : sahityayatra@gmail.com
kalanath@gmail.com
वेब साईट : http:/www.sahityayatra.com

मूल्य : ₹ 45

प्राप्ति स्थान :

पटना-
आलोक कुमार सिंह, मैग्जीन हाउस, सालीमार स्टूडियो के पास,
सहदेव महतो मार्ग, बोरिंग रोड, पटना-800001

दिल्ली -
1. आर.के. मैग्जीन सेन्टर, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट,
दिल्ली, वि.वि., दिल्ली-11007
2. राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय, मंडी हाउस, नई दिल्ली

शुल्क **'साहित्य यात्रा'** के नाम पर भेजें।

'साहित्य यात्रा' त्रैमासिक डॉ॰ कलानाथ मिश्र के स्वामित्व में और उनके द्वारा 'अभ्युदय' ई-112, श्रीकृष्णपुरी, पटना-800001, बिहार से प्रकाशित तथा ज्ञान गंगा क्रियेशन्स, पटना से मुद्रित। स्वामी/संपादक/प्रकाशक/मुद्रक : डॉ॰ कलानाथ मिश्र।

अनुक्रम

संपादकीय 07

साक्षात्कार

सुप्रतिष्ठ कथा लेखिका चित्रा मुदग्ल जी से साक्षात्कार 11
डॉ. हेमचन्द्र वैद्य

आलेख

नन्दास का आचार्यत्व 21
डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

साहित्य की चोरी से सस्ती लोकप्रियता: समस्या और समाधान 30
डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

समकालीन मलयालम और हिन्दी कविता में बदलते सामाजिक सम्बंध 34
महेष एस

अंधायुग : समकालीन विद्रूप राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति 40
डॉ. अनिल कुमार सिंह

लोकटाक कब तक! 45
डॉ. रीतामणि वैश्य

छोटी यात्राएँ 55
अम्बिका दत्त

मानस में नारी 64
डॉ. नीलिमा मिश्रा

कहानी

दूसरे देश में 73
मुल लेखक : अर्नेस्ट हेमिंग्वे
अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

मिसफिट 79
सुशांत सुप्रिय

आलेख

धर्मनिरपेक्षता का भारतीय संदर्भ : एक मानवतावादी दृष्टिकोण 84
डॉ. श्याम सुन्दर प्रसाद

हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श 90
शिप्पा झा

कहानी

अमरकांत की कहानियों में प्रतीक 93
सुलोचना कुमारी

समीक्षा

ख़मोश लम्हों का सफ़र-बंधनों को तोड़ता हुआ एक सफ़र 98
संजय कुमार 'कुन्दन'

व्यंग

विश यू स्पीडी रिकवरी 100
मदन गुप्ता सपाटू

ग़ज़ल

छः ग़ज़लें 102
शिवनारायण

कातिल निगाहों को उठाइए जरा 104
सलिल सरोज

रिपोर्ट

महात्मा गाँधी के जन्म के 150वें वर्ष पर बालकविता संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन 105
डॉ. वेद मिश्रा शुक्ल

श्री विनोद बब्बर को सौहार्द सम्मान 107
डॉ. सदानंद गुप्त, श्री हृदय नारायण दीक्षित, श्री विनोद बब्बर

आपके पत्र 108

सम्पादकीय

उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो

हिंदी भले ही वैज्ञानिक भाषा हो, किंतु भारत में यह ज्ञान-विज्ञान की भाषा नहीं मानी जाती है। हम आपसी बातचीत भले ही हिन्दी अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में करें किन्तु बौद्धिक मंच पर जाते ही हम अंग्रेजी में बोलना आंरभ कर देते हैं। कारण यह है कि हिन्दुस्तान में अंग्रेजी को ज्ञान-विज्ञान की भाषा मानी जाती है। गंभीर से गंभीर बातें स्थानीय भाषा में सहजता से कही समझायी जा सकती है। किन्तु सरल से सरल तथ्यों को दुरूह बनाकर अंग्रेजी में कहना भारत के बौद्धिक जगत का फैशन बन गया है। भारत सरकार की ढुलमुल नीति के कारण भारत की आम जनता को पीट-पीटकर उनकी मातृभाषा पहले भुलाई जाती है और तब उन्हें अंग्रेजी सिखा कर केवल अनुवाद रूप में उन्हें ज्ञान-विज्ञान की पढ़ाई करायी जाती है। अब प्रश्न उठता है कि हमने अंग्रेजी को रोजगार की भाषा के रूप में विकसित कर दिया है। भारत में तर्क यह दिया जाता है कि यदि रोजगार मिलनी है तो अंग्रेजी सीखे बिना कोई उपाय नहीं है। और इसीलिए गाँव गाँव में कुकुरमुत्ते की तरह अंग्रेजी स्कूल खुल गए हैं। भले ही उनकी अंग्रेजी अशुद्ध हो लेकिन जिन बच्चों का दिन 'ओ गॉड' से शुरू हो और 'ट्विंकल ट्विंकल लिट्ल स्टार' पर खत्म हो उनसे भारतीय संस्कृति की बहुत उम्मीद करना उचित नहीं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों में यदि रोजगार पाना है तो अंग्रेजी सीखने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है। यह एक भ्रम है। भारत की बहुसंख्यक आबादी अंग्रेजी ज्ञान के अभाव के कारण बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी पाने से वंचित रह जाते हैं। यहाँ यह तथ्य भी जानना होगा कि बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत छोड़कर अन्य सभी देशों में वहाँ की भाषाओं में ही काम करती हैं। आई आई टी के इन्जीनियर श्री संक्रांत सानु के एक सर्वेक्षण के अनुसार एशिया की 1000 बहुराष्ट्रीय कंपनियों में से 792 कंपनियाँ जापान, कोरिया और ताइवान में हैं जो वहाँ की भाषा में ही काम करते हैं। वहाँ अंग्रेजी का प्रयोग नहीं होता है। वहाँ यदि किसी को नौकरी मिलनी है तो उनके अंग्रेजी ज्ञान की परीक्षा नहीं ली जाती। वहाँ के सामान्य भाषा में ही उन्हें बहुराष्ट्रीय कंपनियों में नौकरी मिलती है। विश्व के कई देशों में चाहे अभियॉत्रिकी की पढ़ाई हो, न्याय की पढ़ाई हो, चिकित्सा शास्त्र की पढ़ाई हो, प्रबंधन की पढ़ाई हो सब वहाँ की स्थानीय भाषा में ही होती है। यही उन राष्ट्रों के विकास का मूल मंत्र है। विश्व के सभी देश अपनी सभ्यता संस्कृति और अपनी भाषा को बढ़ावा देने पर जोर देते हैं, कूटनीति दृष्टि से भी यह आवश्यक है किन्तु भारत आज तक गुलामी की भाषा को ढो रही है।

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि यदि किसी राष्ट्र को कमजोर करना हो तो उसकी संस्कृति को छिन्न-भिन्न कर दिया जाता है और उसकी संस्कृति को मारने के लिए उसकी भाषा को कमजोर कर दिया जाता है भाषा को कमजोर करने के लिए उसकी लिपि को मार दिया जाता है। इस प्रकार उस देश के विकास को अवरुद्ध किया जाता है। प्रेमचंद की यह बात याद रखना चाहिए कि "राष्ट्र की बुनियाद, राष्ट्र की भाषा है। नदी, पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बंधन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधे रहता है, और उसका शीराजा बिखरने नहीं देता।"

अनुच्छेद 351 में हिन्दी के विकास के लिए निर्देश देते हुए यह उल्लेख किया गया है कि हिन्दी का विकास इस प्राकर हो कि वह भारत की सामासिक संस्कृति के समस्त तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके। भारत की सामासिक संस्कृति भारत की विविधता की अभिव्यक्ति है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि बिना मिट्टी पानी की भाषा के मौलिक चिंतन का होना संभव नहीं है। वस्तुतः हम दूसरी भाषा में जब विचार व्यक्त करते हैं तो वह एक प्रकार से अनुदित ही होता है। यही कारण है कि यह देश विगत कई दशकों से ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में पराश्रित हो गया है। सुदृढ़ राष्ट्रीय भाषा के अभाव में समाज में हो रहे बिखराव को साफ देखा जा सकता है। स्थानीय भाषा के बिना समाज और संस्कृति के बीच समुचित तादात्म्य स्थापित करना संभव नहीं है। विगत दशकों में अत्यंत ही सुनियोजित तरीके से हिंदी को ज्ञान-विज्ञान की भाषा के पद से हटाकर अंग्रेजी की स्थिति मजबूत की गई। ताकि देश भौगोलिक रूप से स्वतंत्र रहते हुए भी मानसिक स्तर पर गुलाम रहे। तथ्य यह है कि अंग्रेजी थोपकर देश की 85% जनता को ज्ञान-विज्ञान से अलग कर दिया गया। जिन्हें अंग्रेजी नहीं आती वे आधुनिक तकनीकों का मात्र इस लिए भरपूर लाभ नहीं उठा पाते क्योंकि उसके उपयोग की भाषा अंग्रेजी है। अंग्रेजी और अन्य भाषाओं पर विचार करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अंग्रेजी जानने वालों की संख्या भारत में मात्र 5 प्रतिशत के करीब है या उससे भी कम। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अंग्रेजी थोपे जाने के कारण देश के 85 प्रतिशत से अधिक जनता उच्च शिक्षा के ज्ञान से वंचित रह जाते हैं। देश में हो रहे विकास का संपूर्ण लाभ अंग्रेजी भाषा के कारण आम लोगों तक नहीं पहुंच पाता है। इस संबंध में कुछ तथ्यों की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। विश्व की 91.5 प्रतिशत जनता अंग्रेजी नहीं जानती। 2014 में आईआईटी के इंजीनियर संक्रांत सानू के द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद के आधार पर विश्व के सबसे अमीर 20 देशों में लोक भाषाओं में अभियंत्रिकी और व्यवसायिक शिक्षा उपलब्ध है। इन 20 देशों में से केवल चार देश अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देते हैं। भारत में अंग्रेजी माध्यम के शिक्षण संस्थाओं का विश्व में कोई स्थान नहीं है। भारत के सर्वश्रेष्ठ अभियंत्रिकी संस्थान आईआईटी भी विश्व के इंजीनियरिंग कॉलेजों में 100 के नीचे है। वहीं माइक्रोसॉफ्ट का डेवलपमेंट ग्रुप इजराइल में अपना सारा काम हिब्रू में करते हैं। इजराइल का प्रतिष्ठित इन्जीनियरिंग कॉलेज 'टेक्नियोन' की रैंकिंग हमारे आईआईटी से बहुत उपर है। 'टेक्नियोन' में यदि आपको इन्जीनियरिंग पढ़नी है तो पहले आपको हिब्रू जानना हेगा।

टोक्यो दवा के क्षेत्र में बहुत आगे है। दवा के क्षेत्र में उन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिला है। लेकिन टोकियो विश्वविद्यालय का सारा काम काज जापानी भाषा में होता है। जर्मनी में रोबोटिक्स का निर्माण जर्मन भाषा में होता है। इसी प्रकार पेरिस की संस्थान में पढ़ाई फ्रेंच भाषा में होती है। तात्पर्य यह कि उच्च शिक्षा चाहे वह न्याय व्यवस्था हो, प्रबंधन का क्षेत्र हो, चिकित्सा का क्षेत्र हो, या अभियंत्रिकी हो सब की पढाई अधिकतर विकसित देशों में उनकी अपनी भाषा में होती है। अंग्रेजी तो मात्र कुछ ही देश में है।

वस्तुतः आज भारत में अंग्रेजी स्टेटस सिंबल बन गया है। कुछ लोगों ने यह भ्रामक धारणा फैला रखी है कि अंग्रेजी के बिना विज्ञान चिकित्साशास्त्र और रोजगार मूलक शिक्षा नहीं प्राप्त की जा सकती। इस संदर्भ में श्री विश्वंभर प्रसाद बंधुगुप्त के एक आलेख का यह अंश विचार करने योग्य है।- ''मनुष्य को ज्ञात चिकित्सा का सर्वप्रथम विज्ञान आयुर्वेद है। आयुर्वेद के

पितामह चरक ने 2500 वर्ष पूर्व इस ज्ञान का संकलन किया था। सुश्रुत शल्य-क्रिया के पितामह थे। 2600 वर्ष पूर्व वे और उनके समय के चिकित्सक जटिल शल्य-क्रियाएँ तथा प्रसुतज (सीजेरियन), मोतियाबिंद, कृतिमांग, अस्थि भंग, पथरी और प्लास्टिक शल्य तथा मस्तिष्क की शल्य क्रियाएँ संपन्न करते थे। सुनकारियों (अनिस्थीसिया) के प्रयोग से वे भली भाँति परिचित थे। शल्य क्रिया के सावा सौ से अधिक उपकरणों का प्रयोग करते थे। शरीर रचना विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान, निदान शास्त्र, भ्रूण विज्ञान, पाचन क्रिया, चयापचय, अनुवंशिकी और अस्क्रामिता संबंधी गहरी जानकारी भी बहुत सी पुस्तकों में मिलती है, जिनकी भाषा संस्कृत या भारतीय भाषाएँ हैं।'' इतना ही नहीं चिकित्सा विज्ञान के अलावे भी ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में भारत विश्व में सबसे आगे रहा है। नौचालन की कला का जन्म 6000 वर्ष पूर्व सिंधु नदी में हुआ था। मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा के अवशेषों से भारतीय नगर-नियोजन की उत्कृष्टता का पता चलता है। पुरातत्त्ववेत्ता सर जॉन मार्शल ने लिखा है-''शिल्प, वास्तु और भवन एवं निर्माण की रचनाएँ जो भारत में जगह-जगह विद्यमान है, देखकर कोई भी उनके निर्माताओं के ज्ञान की गहरायी, विचारों की उँचाई और कला की प्रौढ़ता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।'' मिहिरावली (दिल्ली) का प्रसिद्ध लौह स्तंभ न केवल आकार और वनज की दृष्टि से, बल्कि रचना की दृष्टि से भी अद्वितीय है। एक हजार साल की सर्दी, गर्मी, वर्षा का प्रकोप सहन करने पर भी उसमें अभी तक जंग नहीं लगा। गणित का उद्‌गम स्थल भी भारत ही है। बीजगणित, त्रिकोणमिति ओर कजन गणित (कॅलकुलस) भारत की ही देन है। द्विघाती समीकरण श्रीधराचार्य ने ग्यारहवीं शताब्दी में हल किये थे। ईसा से 5000 वर्ष पूर्व भारत में आचार्यगण 10^{53} तक की बड़ी संख्याओं का प्रयोग करते थे और उन्हों ने उनके अलग अलग नाम भी दे रखे थे। स्थानीय मान और दाशमिक प्रणाली ईसा के 100 वर्ष पूर्व भारत में विकसित की गयी थी। आर्य भट्ट का नाम आप सुन चुके हैं। संस्कृत और स्थानीय भाषा में ज्ञान की इतनी उत्कृष्ठता के बावजूद साजिश के तहत यहाँ की भाषा को ज्ञान की भाषा के पद से हटा दिया गया। इस प्रकार भारत की ज्ञान परंपरा को शिथिल कर अंग्रेजी आरोपित कर दिया गया।

भारत में स्थिति यह है कि यहाँ सारे महत्वपूर्ण उत्पादों का विज्ञापन प्रचार-प्रसार अंग्रेजी भाषा में किया जाता है। उन्हीं उत्पादों का विज्ञापन अन्य देशों में जाकर देखें आपको आश्चर्य होगा कि सारी कंपनियाँ अपने उत्पादों का विज्ञापन उस देश की भाषा में करते हैं। चीन में ऑडी कार का विज्ञापन चीनी भाषा में मिलेगा। चीन में सारे तकनीकी प्रयोग स्थानीय भाषा में किया जाता है। इसका फल यह है कि वहाँ के निम्न वर्गीय लोग, कम पढ़े लिखे लोग भी तकनीक का सफल उपयोग कर पाते हैं। हम यदि मैंडरिन नहीं जानते हैं तो चीन के वेटर, ड्राईवर गूगल जैसी ही चीन की अपनी 'बायडू' से अनुवाद कर आपसे संवाद करते हैं। उनके तकनीकी प्रयोग की दक्षता मात्र इसलिए है क्योंकि वहाँ सारा तकनीकी प्रोग्रामिंग साफ्टवेयर स्थानीय भाषा में है। जो फोन भारत में अंग्रेजी में काम करता है वह अन्य देशों में चाहे वह जर्मनी हो, जापान हो, चीन हो फ्रांस हो वहाँ उनकी भाषा में काम करते हैं। परिणाम यह है कि वहाँ के आमजन उसका सही उपयोग करते हैं। भारत के लोगों को जानना चाहिए कि चीन में गूगल और फेसबुक पर भी प्रतिबंध है।

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि भारत की आम जनता कभी भी अंग्रेजी के पक्ष में नहीं है। इसका उदाहरण आप को भारत में समाचार पत्रों अथवा अंग्रेजी चैनलों के प्रसार संख्या से मिल सकता है। अंग्रेजी भाषा के अखबारों, टेलीवीजन चैनलों तथा भारतीय भाषा के चैनलों की प्रसार में कोई तुलना नहीं है। मात्र 5 ये 10 प्रतिशत लोग अंग्रेजी अखबार पढ़ते हैं।

थाईलैंड तक में गाड़ियों में आप नंबर प्लेट उनकी लिपि में देखेंगे। थाई की लिपि ब्राह्मी लिपि पर आधारित है। अन्य देशों में भारतीयों के किताब का अनुवाद कर पढ़ाते हैं। किन्तु भारत में वह किताब यदि हिंदी में है या अन्य प्रांतीय भाषाओं में लिखा हुआ है तो ज्ञान विज्ञान के क्षेत्र में उनकी उपेक्षा होती है।

आज भारत में स्थिति यह है कि हम पहले अपने ज्ञान को भुलाते हैं और तब धीरे-धीरे अंग्रेजी के अनुदित ज्ञान को अपनाते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारा मौलिक सोच कुंद हो जाता है। नए अविष्कारों में हम पिछड़ जाते हैं। विडंबना है कि आजादी के 75 साल बाद भी हम भाषा ही स्तर पर गुलाम बने हैं और दिन प्रतिदिन यह गुलामी मानसिकता बढ़ती ही जा रही है। हमारी संस्कृति उनके प्रभाव में धीरे-धीरे नष्ट हो रहा है। ध्यान रखना होगा कि आयातित भाषा में हम मौलिक चिंतन नहीं कर सकते। यही हमारे देश के शिक्षा पद्धति की सबसे बड़ी कमजोरी है। क्योंकि जब तक हम ज्ञान की भाषा हिंदी अथवा क्षेत्रीय भाषाओं को नहीं बनाते हैं तब तक मौलिक चिंतन का अभाव रहेगा। वे अपनी नीतियाँ हम पर अपनी भाषा के माध्यम से थोपते रहेंगे।

आप देखेंगे कि कोई भी सेमिनार हो, कोई भी संगोष्ठी हो, वक्ता भले हिंदी में बोलें लेकिन उनका पत्र अंग्रेजी में लिखा होता है। मंच पर जो बैनर है वह अंग्रेजी में लिखा होता है। यदि गंभीर से गंभीर बात भी हिन्दी या क्षेत्रीय भाषाओं में कहीं जाएँ तो उसका महत्व नहीं दिया जाता किन्तु हल्की से हल्की बात भी गुलामी की भाषा में वक्ता कह देते हैं तो उसका उद्धारण दिया जाने लगता है। हमें इस भ्रमजाल से निकलना होगा। तभी हम नई सोच नया दृष्टिकोण, भारतीयता, अपनी और अपनी संस्कृति को ठीक से समझ पाएंगे।

इस वर्ष का साहित्य अकादमी पुरस्कार सुप्रतिष्ठ कथा लेखिका चित्र मुद्गल को उनके उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203-नाला सोपारा' के लिए मिला। चित्र दीदी के लेखन का एक बड़ा हिस्सा उनकी नीजी जिन्दगी से उपजी हैं। विगत 10 दिसंबर को उनका जन्मदिन भी था ऐसे में इस सुखद उपलब्धि के लिए उन्हें बधाई।

हिंदी की सुप्रसिद्ध कथा लेखिका ममता कालिया को 'दुक्खम सुक्खम' के लिए 27वां व्यास सम्मान दिया गया। साहित्य यात्रा परिवार की ओर से ममता जी को बधाई।

इस के साथ ही 'साहित्य यात्रा' के सलाहकार तथा संस्त, पाली प्रात, अपभ्रंश और हिंदी के विद्वान आचार्य श्री रंजन सूरिदेव का 94 वर्ष की आयु में विगत 12 नवम्बर को देहावसान हो गया। उनके देहावसान से 'साहित्य यात्रा' को गहरा आघात पहुँचा है। साहित्य यात्रा परिवार की ओर से आचार्य सूरिदेव को विनम्र श्रद्धांजलि।

हिंदी के अप्रतिम कथाकार और पत्रकार हिमांशु जोशी का विगत 23 नवम्बर को निधन हो गया। जोशी जी के साथ मेरी कई स्मृतियाँ जुड़ी है। वे प्रेम, प्रकृति, अंचल और संवेदना को रूपायित करने वाले रचनाकार थे। साहित्य यात्रा परिवार उनके प्रति गहरी संवेदना अर्पित करती है।

इस अंक में अपना रचनात्मक सहयोग देने वाले समस्त रचनाकारों को आभार।

कलानाथ मिश्र

सुप्रतिष्ठ कथा लेखिका चित्रा मुदगल जी से साक्षात्कार

डॉ. हेमचन्द्र वैद्य

हिन्दी के लिए इस वर्ष का साहित्य अकादमी पुरस्कार सुप्रतिष्ठ कथा लेखिका चित्रा मुद्गल जी को उनके उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. -203, नाला सोपारा' के लिए मिला। चित्रा मुद्गल तेरह कहानी संग्रह, तीन उपन्यास, तीन बाल उपन्यास, चार बाल कथा संग्रह, पांच संपादित पुस्तकों के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य और समाज की श्रीवृद्धि में अपनी महती भूमिका निभाती रही हैं। चर्चित उपन्यास 'आवां' को देश के छह प्रतिष्ठित सम्मान मिल चुके हैं। 2003 में 'आवां' को 'व्यास सम्मान' मिला था। उपन्यास का आठ भाषाओं में हो चुका है और कई अन्य महत्वपूर्ण सम्मान भी मिल चुका है। चित्रा जी को 'साहित्य यात्रा' परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

इस अंक में मिलिए चित्रा मुद्गल जी से डॉ. हेमचन्द्र वैद्य जी के इस जीवंत साक्षात्कार के साथ।

प्रभाकर क्षोत्रिय जी उस समय भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक थे डेमिन काकी पर उनकी टिप्पणी थी आपने डोमिन काकी को लघु कथा के रूप में क्यों परिवर्तित कर दिया! जब संशोधन किया था तो बड़ी कहानी के रूप में विकसित करतीं वैसे डेमिन काकी अपने लघु आकार के बावजूद कद में बड़ी कहानी है।

आपके लेखन की शुरुआत कब, कहाँ और कैसे हुयी? आपको प्रेरणा कहाँ से मिली?

1957 में जब मैं मुम्बई स्थित घाटकोपर के हिन्दी स्कूल की सातवीं कक्षा की विद्यार्थिनी थी, उस समय स्कूल की वार्षिक पत्रिका अर्चना में मेरी सबसे पहली कहानी प्रकाशित हुई थी। मैंने अपने कक्षा के अध्यापक गोपाल सिंहजी के आग्रह पर लिखी थी। कहानी प्रतियोगिता में भाग लेने के लिए प्रतियोगिता में पुरस्कृत होने वाली रचनाओं को वार्षिक पत्रिका अर्चना में प्रकाशित होने का

अवसर मिलेगा गोपाल सिंह सर ने आवश्वासन दिया था।

अपरिपक्व कहानी को पचास वर्षोपरांत मैने सुधार कर पहले उसे आकाशवाणी में पढ़ा तदुपरान्त कुछ और संशोधन कर उसे 2005 में भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित अपने लघुकथा संकलन बयान में सम्मिलित कर लिया। आज दक्षिण में डोमिन काकी ग्यारवहीं कक्षा की हिन्दी की पाठयपुस्तक में संकलित होकर सराही जा रही है।

प्रभाकर क्षेत्रिय जी उस समय भारतीय ज्ञानपीठ के निदेशक थे डेमिन काकी पर उनकी टिप्पणी थी आपने डोमिन काकी को लघु कथा के रूप में क्यों परिवर्तित कर दिया! जब संशोधन किया था तो बड़ी कहानी के रूप में विकसित करतीं वैसे डेमिन काकी अपने लघु आकार के बावजूद कद में बड़ी कहानी है।

कहानी लिखने की वह उम्र नहीं थी। न मन में कोई सपना अकुंचाया था कि मैं लेखक बनूं! हां, स्मरण है अब तक का हार-जीत की परवाह किए बिना मेरे भीरत बैठा हुआ विद्यार्थी प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए सदैव उत्साह से मर उठता था। चाहे वह खेलकूद की स्पर्धाएं हो या कविता, निबंध या वाद-विवाद प्रतियोगिता।

लेकिन यह पूरी तौर पर सही नहीं है। मरे चित्रकला के शिक्षक एस.एन. जोशी सर, चित्रकला की कक्षा में मेरे बनाए चित्रों की तारीफ कर जब यह कहते कि तुम बहुत सुन्दर चित्र बनाती है, महेनत करोगी तो किसी रोज तुम बहुत बड़ी चित्रकार बनोंगी। अखबारों में प्रकाशीत चित्रकला की प्रदर्शनियों की खबरों को उन दिनों बहुत ध्यान से पढ़ने लगी थी।

सोचती हूँ, तो पाती हूँ कि लिखने की ओर प्रवृत्त करने में मेरे भीतर बैठे असंतोष और असंतोष से उपजे आक्रोश का दबाव रहा, लेकिन उसे सही मायनों मे अभिव्यक्त चेतना से जोड़ने को प्रेरित किया सोमैया कालेज मुंबई के मेरे हिन्दी के आदरणीय प्रोफेसर अनंतराम त्रिपाठी ने। त्रिपाठी सर छात्र-छात्राओं को अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित ही नहीं करते थे, उनकी रचनाओं को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से पाठकों तक पहुंचाने का प्रयास भी करते थे।

स्कूल की पत्रिका अर्चना से बाहर निकल मेरी रचनाओं ने स्थानीय अखबारों में स्थान पान शुरू किया और पहली बार प्रकाश पादुकोण, क्रिकेटर अब्बस अली वेग और पोली अमरीगर के साथ, उन्हीं अखबारों में छात्र जगत की खबरों में मैंने अपनी तस्वीर को भी प्रकाशीत होते पाया।

सामंतवादी प्रवृत्तियों से आहत मेरे मनोबल को एक नयी उर्जा ने हौसलों से थपकाया शून्य नहीं हूँ मैं। कुछ क्षमताएं मुझमें हैं।

क्या कभी-कभी आपको ऐसा लगता है कि कहानी लिखने के बाद भी कोई ऐसा बिन्दु रह गया जो चाहकर भी नहीं आ पा रहा हो?

वैद्य जी, जिस बिन्दु और दृष्टि से मैं कोई कहानी लिखना चाहती हूँ वह अगर उस कहानी में मूर्त नहीं हो पाया है तो मैं उस कहानी पर तब तक परिश्रम करती हूँ जब तक कि उस कहानी का मर्म पूर्णत: अपनी तार्किकता नहीं अर्जित कर लेता। चाहे उस कहानी में मुझे चार या पांच ड्राफ्ट करने पड़े। हालांकि इस बात से मैं इंकार नहीं कर सकती और मैंने इसे स्वीकारा भी है कि कई ड्राफ्ट कर लेने और रचना के छप जाने के बावजूद उसे प्रकाशित रूप में कभी पढ़ने पर

यह एहसास हुआ है कि विशेष परिस्थितियों के दबाव जन्य परिवेश में पले, बढ़े चरित्र की मन: स्थितियों के मनोविज्ञान पर कुछ और गहराई से काम होना चाहिए था।

आपको जानकर हैरानी होगी, मैंने उन कहानियों पर फिर से काम किया है कहानी में एक आधा शब्द या वाक्य आपको जुड़ा या घटा हुआ मिल सकता है लेकिन कहानी वही रहेगा। इसे कोई मेरी रचनागत अपरिपक्ता भी कह सकता है।

आजकल कहानी-शिल्प में आत्मकथात्क शैली से लिखने का आग्रह बढ़ता जा रहा है। कविता में भी यह बात आ रही है। निजी अनुभूतियों को प्रामाणिकता के आधार पर सार्वजनिकता प्रदान कर सामने रखी जा रही है। यह कहाँ तक उचित है। आपकी क्या राय है?

कभी-कभी रचना प्रकाशित होने से पूर्व अपना शिल्प स्वयं चुनती है कि किस तरह से वह सृजित होने वाले कथा तत्व में अपनी दृष्टि को विन्यस्त करे कि वह अधिक प्रभावी तरीके से व्यक्त हो, पाठकों की सुप्त संवेदना के उस पक्ष को प्रति संवेदित कर सके।

दूसरा पक्ष यह भी है कि चेतना में विकसित होती कहानी स्वयं की गढ़न का जिम्मा पूर्णत: सर्जक को सौंप देती है ताकि वही उसे कागजों पर आकारित करने के लिए अनुकूल शिल्प और शैली का चुनाव करें।

आत्मकथात्मक शैली अत्यंत प्रभावशाली शैली है। विश्व की अनेक मील का पत्थर कहानियाँ और उपन्यास इस शैली में रचे गये हैं। जैनेन्द्र का त्यागपत्र और अजेय का शेखर एक जीवनी उत्तम पुरूष में लिखे गए आत्मकथात्कशैली के उपन्यास है। कहन की एक ऐसी सर्जनात्म्क अनूठी शैली जो कथा में व्यक्त अनुभूत से प्रतीत होते यर्थाथ को स्वयं उसके लेखक का निजी यथार्थ न होते हुए भी पढ़ते हुए यह भ्रम निर्मित करता है कि-कहीं यह उसके लेखक का त्रासद जीवन सत्य तो नहीं?

कहने में कतई संकोच नहीं हो रहा कि नितांत गोपन अनुभूतियों की आत्मकथात्मक शैली की आड़ में बेपर्द बयानी किसी भी कवि, कहानीकार, उपन्यासकार के लिए सर्जनात्मक चुनौती से पलायन है। सर्जक शब्दों का चितेरा है और बिम्बो का रचयिता।

आज के इलेक्ट्रानिक मीडिया के युग में आप साहित्य को कितना प्रासंगिक मानती है?

साहित्य का विकल्प इलेक्ट्रानिक मीडिया कभी नहीं हो सकता। साहित्य की सामाजिक भूमिका तब भी महत्वपूर्ण थी जब कागज का आविष्कार नहीं हुआ था और भारत में वह अलग-अलग रूपों में और विधाओं में भोजपत्र पर लिखा जा रहा था। जब विदेशी आक्रान्ताओं ने नालंदा विश्व विद्यालय की साहित्यक संपदा को जलाया, लूटा तब उसका संरक्षण हुआ वाचिक परंपरा के माध्यम से लोक साहित्य ने श्रृति परंपरा विकसित की। कौन है उन गीतों का रचयिता नहीं मालुम, मगर एक दूसरे के सुन गुन कर लोगों ने उसे नयी पीढ़ी को सुनाया और सौंपा। नयी पीढ़ी ने अपनी नयी पीढ़ी को सर्दी के दिनों में अलाव तापते हुए सुना उसे हुंकारी भरते हुए आले पर रखे हुए दिन की रोशनी में किस्से सुनाती दादी के पोपले मुख से तराश उन कथाओं को अप्रतिम शिल्पकारों ने मंदिरों की चट्टानी भीतियों पर साहित्य को उसकी सामाजिक प्रासंगिकता से न तब

कोई आविष्कार अपदास्थ कर पाया न वर्तमान मे विज्ञान का करिश्माई चमत्कार इलेक्ट्रानिक मीडिया उसे क्षति पहुंचा सकता है।

गौरतलब है कि जैसा होता आया है और होता रहा है और अब भी होगा रूझान भटकेंगे, आदतें बदलेगी, विचलन संवेदनशील बनाएंगे। निजी स्वार्थघोर व्यक्तिवाद तात्कालिकता असहिष्णु मगर लौटेंगे लोग चिन्तन मनन करेंगे इलेक्ट्रानिक मीडिया को सकारात्मक पक्ष जीवन को गति देंगे। नकारात्मक पक्षों की कुपरिणितियों के प्रति साहित्य संवेदनशील होगा। हो रहा है। इस तथ्य से सभी वाकिफ है कि इलेक्ट्रानिक मीडिया के सर्वर के डाउन होते ही उससे संचालित समस्त कार्य व्यापार ठिठक जाते है। हाँ उसकी पहुँच और उपादेयता से मुँह मोड़ना संभव नहीं। पलक झपकते की पूरा विश्व एक दूसरे के संपर्क में होता है। साहित्य के प्रचार प्रसार में इलेक्ट्रानिक मीडिया की भूमिका असँदिग्ध है। बल्कि स्वीकार करने में गुरेज नहीं कि यदि सही तरीके से साहित्य के प्रचार प्रसार के लिए उसका उपयोग किया जाए तो वह पूरक की भूमिका में खड़ा हुआ नजर आता है। दुनियाँ ने जिन हिस्से में साहित्य पढ़ने के इच्छुक पाठक पुरस्तकों की अनुपलब्धता के चलते उन्हें पढ़ पाने से वंचित रह जाते थे, पुस्तकें अब उन तक पहुंच रही हैं। चाहे वह ई-बुक्स के रूप में ही सही। प्रकाशक भी अब ईलेक्ट्रानिक मीडिया की उपादेयता के प्रति सजग हो रहे है। यह स्वागत योग्य पहल है।

विदेश यात्रा के दौरान अविश्मरणीय अनुभव। विचार क्या आप हम श्रोताओं के साथ बांटना चाहेंगी?

2007 में फैंकफुर्त में आयोजित होने वोल विश्वपुस्तक मेले में भारत अतिथ देश था। साहित्य अकादमी की ओर से लेखकों का एक छोटा मोटा एल.एम.टी.वासुदेवन नायर, प्रतिमाराय, उपमन्यु चटर्जी, गुलजार, कृष्णमुर्ति, निदाफाजली आदि के साथ मैं स्वयं, गोपीचंद नारंग की अगुवाई में वहाँ पहुँचे थे। विदेश की धरती पर पाव रखते ही जो मेरी सबसे प्रबल इच्छा होती है कि मैं काक्रीट की समृद्विके बजाए वहाँ के गाँवो की संस्कृति का अवलोकन कर सकूं। मैने अपनी ईच्छा गोपीचंद नारंग पर प्रकट कर दी थी दिल्ली से फैंकफर्त की उड़ान से पूर्व नारंग साहब ने मुझे आश्वस्त किया था। हम सब भी आपके साथ जर्मनी के गाँव देख ना चाहेगे चित्राजी।

जब भी हम विदेश यात्रा पर जाते है, दिल दिमाग में वहां के साफ सुथरेपन के साथ-साथ कायदे कानून और अनुशासन के अनुप्रणित वहां भी सामाजिक व्यवस्था के प्रति भी प्रशंसाभाव से मरे हुए होते हैं। विदेशी भी अपनी सुदृढ़, सुचारू अनुशासित सामाजिक व्यवस्था पर इतराते हुए अक्सर अपने मनोभाव भारत के विषय में युं व्यक्त करते हैं विकासशील भारत भूखे-नंगो का देश ही नहीं है, वहां कानून व्यवस्था नाम की भी कोई चीज नहीं है। यहां तक कि विदेशों में बसे भारतीय भी अपने देश में आकर उनके राग में राग आलापते हुए अपने देश को कोसते हुए दिखाई पड़ते है।

लेकिन जिस दहशतकारी घटने ने वहाँ के कायदे-कानूनों की पोल उजागर करके रख दी, आज भी उस घटना को स्मरण कर मैं कांप उठती हूँ। घटना स्टूर्टगार्ड के एक गांव के अंगूर के खेतों के बीचों-बीच स्थित वाइन की फैक्टरी के निकट की है।

हमसे से कुछ लोग खेतों की मेड उतर कर वाईन की फैक्टरी में पहुँच चुके थे, कुछ मेड के रास्ते पर खड़े लहलायी अंगूर की बेलों को देख रहे थे। कि तभी अचानक तेजी से शोर मचाती हुई एक मोटर बाईक हमारी ओर आती दिखी। हम रास्ते पर जगह बनाते हुए दो भागों में बंट गए। लेकिन तभी उन बाईक सवारोंने निदाफाजली जी के हाथ में लटक रहे उनके पर्स को भटका और कुछ कदम आगे खड़ी मेरे कोहनी मे लटक रहे पर्स की ओर हाथ बढ़ाया मगर हुआ यह कि मैं मेड़ पर पीछे की ओर लढ़क गयी। पीछे वाले वाईक सवार के हाथों में तमंचा तना हुआ था। निदाजी के पर्स में उनका पासपोर्ट, युरो और डालर आदि थे। मैं बच गयी। मगर आज भी यह प्रसंग याद आते ही रूह कांप जाती है यदि निदाजी पर्स के लिए छिना झपटी पर उतर आते और पिछे बैठे हुए बाईक सवार के तंमचे का शिकार हो जाते तो क्या होता? विदेशी धरती पर कल्पना से परे था।

हमारा लेखक की दिन व दिन असहिष्णुता का शिकार होता जा रहा है। वह अपनी आलोचना भी नहीं सुन सकता ऐसा क्यों? इस संबंध में आप क्या सोचती हैं?

वैद्यजी सिद्धान्तत: मेरा मानना है कि प्रतिबद्ध साहित्यकार का काम है लिखना साथ ही सरोकारों को पूरी सक्रियता के साथ आचरण में जीना। अनेक तनावों, व्यवधानों और प्रतिघातों के बावजूद उनकी चेतन अभिव्यक्ति की अडोल निरन्तरता ही दरअसल उसके संजीदा लेखन का मुख्य ध्येय होती है। होती है वह उसका जुनून। समझौतों से परे।

मैं यह भी मानती हूँ। आलोचना की उसे परवाह नहीं करनी चाहिए लेकिन पक्षपाती आलोचना से निरपेक्ष रह पाना किसी भी अति संवेदनशील, विचारशील रचनाकार के लिए संभव नहीं। काठ नहीं होता लेखका दरकता है। कहे अनकहे उसका मनोबल।

अत्यंत निर्भन्द भाव से मैं यह भी स्वीकार करना चाहती हूँ और मानती हूँ कि तटस्थ आलोचना किसी भी भाषा के साहित्यक का मूल्यांकन परक युगीन इतिहास होता है और उसकी वही नीरक्षीर विवेक दृष्टि निथरकर आयी मील का पत्थर रचनाशीलता की उन्नायक।

लेकिन इधर कुछ भटकी, खेमों में बंटी, विचारधारा के लबादे में गिरवी पक्ष-विपक्ष के दल-दल में धंसी हुई आलोचना जब स्वयं निष्पक्ष नहीं रह पा रही तो, प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर उससे कैसे उम्मीद की जा सकती है। कि वह भविष्य में साहित्य का कोई तर्क सम्मत प्रामाणित इतिहास की संरचना का भार वहन कर सकेगी।

हो सकता है वैद्यजी अन्य रचनाकार मुझसे सहमत न हों। बहरहाल आलोचना कार्य का उत्तरदायित्व अब युवा आलोचको के कन्धों की मजबूती तलाश रहा है।

हिन्दी और भारतीय साहित्य में महिला साहित्यकारों के अवदान को आप कैसी देखती है?

स्त्री के उपर अनेक दृष्टियों से हिन्दी और भारतीय साहित्य में बहुत कुछ लिखा गया लेकिन स्त्रियों के द्वारा स्त्रियों पर लिखा गया साहित्य, साहित्य के अधूरे पक्ष का पूरक पक्ष है। स्त्री के धड़ के ऊपर मस्तिष्क को नकारने वाली पितृसत्ता ने आरंभिक दौर में कई छिछली टिप्पणियों के द्वारा उसकी चेतन अभिव्यक्ति को जनाना लेखन कह कर नजरन्दाज करने की कोशिश की लेकिन आगे चलकर सन् साठ के बाद से उन्होंने कृष्णा सोबती, मन्नु भंडारी और उषा भंडारी और ऊषा

पियंवदा के लेखन को जनाना लेखन खिताब से मुक्त कर उन्हें नयी कहानी के दौर में मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव की तिगडी के बरक्स कृष्णा सोबती, मन्नु भंडारी और उषा प्रियवंदा की तिगड़ी को मान्यता दी कि वे खूब अच्छा लिख रहीं है। लेकिन उनके समान्तर खि रही रोष लेखिकाओं के लेखन को उन्होंने विशेष तवज्जों नहीं दी। उसे स्त्री का निजी रोना-धोना भर ही माना।

जहाँ तक मैने जाना है और अनुभव किया है लगभग सभी भारतीय भाषाओं में आर्रभिक स्त्री लेखन की उपस्थिति को जनाना लेखन की हेय दृष्टि से आंका गया है। हिन्दी में भी महीयसी महोदेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान के साहित्य अवदान को अपने समकालीनों के मध्य उस तरह से मूल्यांकित नहीं किया गया जिस तरह से उनका हुआ। स्थिति सभी भाषाओं में ठिक उसके उलट है।

महिलाओं के लेखन को निजी रोने-धोने की अभिव्यक्ति तक सीमति मानने वाले अब यह टिप्पणी करते हुए दृष्टिगत हो रहे हैं-ईक्कीसवीं सदी महिला लेखन की सदी है। वह यह स्वीकार कर रहे हैं मराठी में चाहे ज्योत्सना देवधर हो या नयी पीढि का दमदार प्रतिनिधित्व करने वाली आशा बगे, उर्मिला पावार, गुजराती में कुन्दनिका कापडिया हो या ईला अरब मेहता या सरोज पाठक या कन्नड़ में वैदेही, तेलगू में वोल्गा हो या पंजाबी में दिलीपकौर दिवाण या अमृता प्रीतम, बंगाली में महाश्वेताजी हो या नबोनीता देवसेन उड़िया में पइतिमाशंय हो या पारमिता स्तपथी साहित्य के इत्तिहास में इन लेखिकाओं के अवदान को नकारा नहीं जा सकता। प्रतिष्ठित आलोचक डॉ. चन्द्रकांत बांदिवडेकर ने अपने एक साक्षात्कार में बड़े खुलेमन से इस तथ्य को स्वीकारा है कि हिन्दी में जितना वैशिष्ठ भरा महिला लेखन हुआ है और हो रहा है वैसा मराठी तो क्या किसी अन्य भारतीय भाषओं में भी नहीं हुआ है।

आवां की रचना प्रक्रिया के बारे में बताइए

आवां के लिखते हुए लगभग छह-सात वर्ष का समय लग गया। हाथ से लिखे हुए चौदह सौ पृष्ठों के पहले ड्राफ्ट के कई ड्राफ्ट करने पड़े। पांचवे ड्राफ्ट में जाकर की आश्वस्ति हुई कि जो कुछ मै कहना चाहती हूँ और जिस तरह से विरूपआओं को शब्दबद्ध करना चाहती हूँ उसके निकट पहूँच पायी हूँ। एक पन्ने पर मेरे हाथ से लिखे तकरीबन चार सौ के करीब शब्द आते हैं। आप अनुमान लगा सकते है वैद्यजी पांचवे ड्राफ्ट तक पहुँचते मेरी क्या हालत हुई होगी। दाहिने कंधे और परवैरो की स्थायी पीड़ा ने मुझे सरवाईकल की व्याधि का मरीज बना दिया।

सच तो यह है कि जब से मैंने लिखना शुरू किया टायपिंग की सुविधा से सदैव वंचित रही हूँ। ऐसा नहीं है कि टायपिंग सीखने की कोशिश नहीं कि मैंने। शब्दों के टंकण की ध्वनि अखरती थी। एकाग्र नही होने देती थी। रूची नहीं जगी। इसलिए शायद कागज और कलम के बीच मेरी चेतना ने तीसरे की उपस्थिति को स्विकार नहीं किया और अब तक परिपकृत अनेक सुविधाओं के अनजाने के बावजूद। अनेक शुभेच्छुओं की शुभेच्छा के बावजूद मैं अने उस ढर्रे से छटक नहीं पायी।

यह भी सच है, घर पर रह कर मैं कहानीयाँ तो लिखी सकती हूँ, उनके तीन-चार ड्राफ्ट की मांग भी घर की मेज पर संभव हो पाते है। मगर उपन्यास के पहले ड्राफ्ट का सिर्फ खाका ही खींच पाती हूँ। उसके अगले ड्राफ्ट के लिए मुझे नितांत एकांत की आवश्यकता होती है। निर्जन एकांत भी उस मन:स्थिति ने मुझे डराता नहीं। क्योंकि भीतर मेरे बस चुकी होती है तब तक पूरी एक अलग दुनियां उस दुनियां में दाखिल होते ही कट जाती हूँ मै और कटी रहती हूँ उस बाहरी दुनियां से जिसकी हलचलों में सुगबुगाती रहती है मेरी सक्रियताएं, रिश्तों की संवदनाएं, दायित्वों के सरोकरा, लोगों की पुकारती, दुलारती आपेक्षाओं से मेरी छुअन, ठीक उलट पाती हूँ, कलम ने मुझे जिस अन्य भरीपूरी दुनिया में? कराया है-उन्हीं में से कोई एक हो गयी हूँ मैं जिनकी कोई अपेक्षा नहीं है मुझमें बनु केवल उनके संघर्ष की साक्षी, उतनी भर है चाहना।

वे कौन से अनुभव या कारण थे जिन्होंने आपको आवां लिखने के लिए प्रेरित किया?

वह सुबह जो अपने साथ लेकर आयी थी छत्तीसगढ़ के मजदूर नेता शंकर गुहा नियोगी की हत्या की खबर!

जिन्दा कर दिया था जिस खबर ने बरसों बरस पूर्व विस्मृति के गर्भ में ढ़केल दिए गये उन प्रश्नों को जो ढ़केलने के बावजूद दफन नहीं हो पाए थे।

क्यों हारता है हर बार मजदूरों का संघर्ष? पूंजी की क्रयशक्ति के आगे क्या दुनिया की जड, जेतन, प्रत्येक वस्तु बिकाऊं है? भावना, संवेदना, नैतिकता, श्रम, पसीना.....सब, सब लेकिन तय है, मजबूर हो उठता है तो बिक जाता है मेहनतकशों का भविष्य, बिक जाता है उसका संघर्ष, लेकिन क्या सोचना जरूरी नहीं कि उसकी क्या बाधयता के पीछे कारण क्या है? देखा तो मैंने श्रमिको के घरों की सिगड़ियों की ठंडी पड़ी राख को।

आगरा रोड के किनारे किनारे कुर्ला से लेकर मुलुंड तक फैला मुंबई का वह औद्योगिक इलाका उस इलाके की मंझोली पहाड़ियों की तलहटी पर बसी झोपड़ पट्टियों में एक जनू भात-दाल के लिए दम तोडते तरसते अबोध बच्चे। बच्चे नहीं जानते थे हड़तालों का मतलब नहीं जानते थे क्यों बढ़ रही है लॉक आउट की मियादे। लेकिन जानती थी पूंजी हड़ताले जितनी लंबी खिचेगी, मजदूर के घरों की पेट की आग उन्हें झुकने के लिए मजबूर कर देगी। छोड़ रहे है हम चालीस टका बोनस की मांग पांच टका ही दे दो। मगर खोलदो फैक्टरी के गेट पर लटका रहा ताला।

कॉलेज से लौटकर कुछ विद्यार्थी सफेद कागजों से ढंके डालडे के डिब्बे को लेकर इंडियन लिंक चेन भांडूप मुंबई फैक्टरी के सामने की सड़क पर खड़े हो जाते। सड़क पर दौड़ती गाड़ियों को रोकते। डिब्बो पर लिखा होता एक चपाती की कीमत भर का पैसा चाहते है हम आपसे। कृपया हमें निराश न करें।

गाड़ियों के पीछे दौड़ते भागते दोपहर से साझ हो जाती मगर हमारे डिब्बे पूरे भर न पाते। उन दिनों इस द्वन्द ने भी गहरे झकझोरा था कि श्रमिक नेताओं के घर के चूल्हों की राख क्यों नहीं ठंडी पड़ती हड़ताल के दिनों में? सोच वैद्यजी आवां न लिखती तो जी कैसे पाती.....।

वैसे तो एक लेखक के लिए अपनी प्रिय कृति का नाम ले पाना सरल नहीं होता। फिर भी आप अपनी किसी प्रिय कथा कृति के बारे में बतलाए।

वैद्यजी, इस सवाल ने हमेशा मुझे असमंजस में डुबोया है।

समाज की मुख्य धारा में समान्य नगरिकों की भाँति जीन के अदम्य लालसा से मरा हुआ 2016 में प्रकाशित मेरे नए उपन्यास पोष्ट बॉक्स नं.-203, नालासोपारा का लिंग विकलांग युवा नायक विनोद शाह उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली, जाने क्युं मेरे दिल-दिमाग से उतरता ही नहीं?.... सदियों-सदियों से जनमते ही घर-परिवार और समाज से तिरस्कृत, बहिष्कृत बस्तियों के बजबजाते अन्धेरे कोनों में जीने को अभिशप्त, हाशिए के भीतर भी जिन्हें तिल भर हाशिया नसीब नहीं हुआ-कौन दोषी है इन लिंग विकलांगो के साथ हुयी घोर अमानवीयता के लिए-धर्म, राजनीति, समाज या फिर मनुष्य स्वयं?

इक्कीसवीं सदी में आप हिन्दी भाषा और साहित्य के भविष्य को किस रूप में आंकती है?

चिन्तित हूँ मैं। स्पष्ट हो चुका है। सरकार की भाषा नीति तृष्टिकरण की राजनीति से प्रेरित है। दृढ़ इच्छाशक्ति का अभाव है उसमें। वोट बैंक उसे अपने राष्ट्रीय दायित्व से बिमुख किए हुए हैं। जिस राष्ट्रीय अखंडता के खंडित होने के भय से वह हिन्दी के प्रति संकल्पबद्ध होने से बच रही है-तय है, उसकी वही नीति सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं की भक्षक सिद्ध होगी? बड़ी तेजी से उन सभी को अंग्रेजी लील रही है। हिन्दी नहीं, हिन्दी पट्टी से लेकर पूरी दक्षिण पट्टी के गाँव-गाँव में स्टैपिंग स्टोन और सिंगल वेल अंग्रेजी स्कूल खुल गए है और खुल रहे है और आम जन मानस की मानसिकता को अंग्रेजी की महता से अनुकूलित कर रहे है कि बिना अंग्रेजी पढ़े इस देश में उनके नौनिहालों का कोई भविष्य नहीं है।

विगत पंद्रह वर्षो से हिन्दी की पोषक बोलियों को आठवीं अनुसूची के दाखिल करने और उन्हें स्वतंत्र समृद्ध भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने की क्षेत्रिय राजनीति के पास क्या इस प्रश्न को कोई जवाब है कि मिथ लोचन या बिहार में भोजपुरी या मैथिली माध्यम् से कोई स्कूल नहीं खोला गया है?

अखबारों में इंग्लिश होती हिन्दी विज्ञापनदाताओं से नियंत्रित है बेचारी हिन्दी। बहुराष्ट्रीय कंपनियों की अनुकंपा (विज्ञापन) प्राप्त करने के लिए हमारे देश की राजभाषा के साथ कोई भी मनमानी संभव है-यह कैसा राष्ट्रीय अस्मिता बोध है?

डिजिटलाईजेशन समय की मांग है। पलों में पूरे विश्व को जोड़ने वाली यह तकनीक वर्तमान समय में विज्ञान की एक ऐसी चमत्कारीक देन है जो सचमुच हफ्तों का काम पलों में पूरा कर समय, श्रम और पैसा तीनों की बचत करती है। लेकिन वहीं भी धड़ल्ले से इस्तेमाल हो रही रोमन लिपी में लिखी जा रही हिन्दी और देवनागरी लिपी में लिखी जा रही हिन्दी में हो रही वर्तनी की अशुद्धीयां, खिन्न करने वाली है। जबकि अंग्रेजी अलत नहीं लिखी जा रही, वह अपने व्याकरण के साथ निष्ठ भाव से गतिमान है फिर हिन्दी के साथ ऐसा खिलवाड़ क्यों हो रहा है?

हालांकि 18, 19 अगस्त 2018 को मारीशस में हुए ग्यारहवे विश्व हिंदी सम्मेलन में सीडेक से लेकर तमाम अन्य कंपनीयों से आए युवा सॉफ्टवेयर विशेषज्ञों ने इस मुद्दे पर खुलकर चर्चा की है। आशा बंधती है कि इस दिशा में या विषय में बेहतर विकल्प हाथ लगेंगे आंभावनाएं और दुनियां की तीसरी सबसे बड़ी भाषा हिन्दी-रोजगार की भाषा बन सकेगी मेरा मानना है वैद्यजी, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है यदि समय रहते सरकार अपनी नीति के प्रति सचेत हो जाए।

जहां तक हिन्दी साहित्य का प्रश्न है तो स्पष्ट करना चाहूंगी कि अपने समय के संक्रमणों से जूझती किसी भी महान और समृद्ध भाषा के साहित्य को अनेक सकारात्मक और नकारात्मक उतार-चढ़ावों का सामना करना पड़ता है। हिन्दी अपवाद नहीं। साहित्य राजे-रजवाड़ों के पराक्रमों का इतिहास नहीं होता। वह अपने देश समाज के जन संघर्षो, विसंगतियों, अर्न्तविरोधो और आत्मद्वन्द का इतिहास होता है, वह शासको से शोषित, छलित लोक की आत्मपीड़ा का विलाप।

साहित्य के परिपेक्ष्य में यह ठहरा हुआ जड़ समय नहीं है। आँखे खुली हुई है मगर उन आँखों पर चढ़ी हुई है उपभोक्ता वादी सोच की काली पट्टी। जाहिर है अनेक भौतिक सुख सुविधाओं के बावजूद मनुष्य के जीने की शर्त जटिलतर होती जा रहीं है।

उनके चेतन पर पड़ी मनोग्रंथियों की गांठो की नब्ज पर अगर कोई उंगली रख उन्हें स्वयं अपने अर्न्तमन में झाकने और आत्मविश्लेषण के लिए संवेदित कर सकता है, स्वर्थपूर्ति के लिए दूसरे की छाती पर पावं देकर आगे निकलने की होड कि व्यर्थता के प्रति सजग कर सकता है, समझा जा सकता है कि जिस सुख को पाने के लिए वे अंधाधूध दौड़ रहे है-आखिर उसका प्राप्य क्या है? तो इसका मान अगर उन्हे कोई करा सकता है तो केवल और केवल साहित्य की करा ही सकता है।

अनेक विपरीतताओं और दबावों के बीच यह बात वैद्यजी आश्वस्त करने वाली है कि हिन्दी साहित्य अपने सामाजिक सरोकारों के प्रति प्रतिबद्ध और निरंतर सक्रिय है।

अन्य प्रमुख भारतीय भाषाओं में विशेष रूप से दक्षिण में जहाँ नयी पीढ़ी अपनी भाषा में साहित्य सृजन न कर अंग्रेजी की ओर बढ़ रही है-हिन्दी अब तक इस छूत से बची हुई है। भाषागत् अनेक चाल में लोभी दुश्चिन्ताओं से घिरे हुए हो कर भी।

किसी भी भाषा के साहित्य का भविष्य उस भाषा की सशक्त युवा पीढ़ी की दृष्टि पूर्णचेतन अभिव्यक्ति के मजबूत कंधो पर टिका हुआ है। कहने में रत्ती भर संकोच नहीं हो रहा मुझे, इक्कीसवी सदी हिन्दी साहित्य की सदी होगी। साथ ही मैं यह भी जोड़ना चाहती हूँ-इक्कीसवी सदी महिला साहित्यकारों की सदी होगी।

एक पाठक के तौर पर आपकी कृतियों से होकर गुजरते हुए यह महसूस होता है कि आपके नारी पात्रों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है उनका जुझारूपन, उनकी जिजीविषा और हार न मानते हुए प्रतिकूल परिस्थितियों-समस्याओं से टकराना अर्थात वे पात्र परिस्थितियों के सामने सर्मपण नहीं करते। इस पर आप क्या सोचती है?

समाज अपनी अन्दरूढियों और छद्म मान्यतोओं से तभी मुक्त होता है जब कुछ विवेक जाग्रत लोग उस भेड चाल का हिस्सा होने से इंकार कर देते है। बुलन्द करते है उसके खिलाफ प्रतिरोध का स्वर।

दरअसल स्त्री भारतीय समाज में अनेक छबियों से अलंकृत की गयी है। अबला भी उसको पहनायी गयी तमाम छबियों मे से एक छबी है। अबला या? जिसमें कोई बले न हो जो स्वयं अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो एक और अन्य छबी से उसे महिमा मंडित किया गया है उसका सतीत्व सती के ध्वनित् होती है स्त्री की एक निष्ठता। स्त्री की चारित्रिक उसका सतित्व पवित्रता का प्रमाण पत्र है। चारित्रिक पवित्रता है उसका सत् बल। स्त्री के सत्बल को अनेक चमत्कारों के माध्यम से प्रतिष्ठित किया गया है। समाज मे वह शक्ति स्वरूपा है। असुरों का नाश कर सकती है। लेकिन जबरन उसका चरित्र हनन करने वालें से वह स्वयं की रक्षा नहीं कर सकती ।

कौन है असली स्त्री? परेशान हूँ मैं वैद्य जी।

अर्न्तविरोधी छबियों में दरअसल खो गयी है असली स्त्री। ढूंढ निकालना होगा उस स्त्री को। तय है उसे कोई ओर नहीं ढूंढ सकता। कोई ढूढ सकता है तो स्वयं स्त्री अपने भीतर खोई हुई उस स्त्री को खोज सकती है। मुक्त कर सकती है उसे उस मानसिक उनुकूलन से जिसने असली स्त्री का अपहरण कर उसे जैसा चाहा उस रूप में गढ़ लिया।

मेरी स्त्री वही स्त्री है जो अपने भीतर दुबकी उस सली स्त्री को खोज कर बाहर निकलकर आने के लिए मना रही है। वह स्त्री आवा की नमिता पांडे है, निलम्मा है, सुगन्धा है, किशोरी, देवी है। वह स्त्री एक जमीन अपनी की अंकिता है। वह स्त्री गिलिगडु की सुनगुनिया है। वह स्त्री पोष्ट बॉक्स नंबर 203, नालासोपारी की वंदना बहन है। कहानी केंचुल की कमलाबाई है तो लकड्बग्धा की पछाईवाली।

कहानी सौदा की नायिका को जिस दिन पता चलता है कि उसका ट्रक ड्राईवर पति ट्रेफिकिंग के धन्धो में लिप्त, गांव की भोली भाली लड़कियों को मुंबई में काम दिलाने की आड़ में फारसरोड के दलालो के हाथों बेच कर उन्हें देह व्यापार के गलीच्छ कंधे में धकेल दे अतिरिक्त कमाई धर की सुख-सुविधाओं के लिए उसके हाथ में लाकर रखता है तो वह निश्चय करती है, वह घर-घर चौका बासन करके अपना और बच्ची का पेट भर लेगी लेकिन पति की ऐसी काली कमाई का सुख उसे नहीं चाहिए। पति अपराधी है। उसे तो जेल में होना चाहिए। वह निकल पड़ती है पति को सजा दिलवाने के लिए।

पति परमेश्वर नहीं है सौदा की नायिका के लिए उसे अपने जांगर पर भरोसा है।

मुझे लगता है, स्त्री के धड़ के उपर एक अदद मस्तिष्क जो है उस मस्तिष्क को वह स्वयं पहचान रही है।

नए लेखकों को आप क्या संदेश देना चाहेंगी?

युवा लेखकों को यह मानकर चलना चाहिए कि सर्जनात्मक लेखन बुद्धि विलास नही है।

डॉ. हेमचन्द्र वैद्य

नन्ददास का आचार्यत्व

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी

संस्कृत तथा हिन्दी के ग्रंथों में नायिकाओं के जितने भेदोपभेद किये गये हैं तथा उनका जितना विशद वर्णन हुआ है उतना नायकों का नहीं। नन्ददास ने भी नायिका-भेद की तुलना में नायक-भेद का वर्णन कम ही किया है। उनकी दृष्टि नायिका-भेद पर अधिक रही है। ग्रंथ के अंत में हेला, हाव,भाव तथा रति का संक्षिप्त वर्णन है। फिर भी 'रस मंजरी' इस अर्थ में प्रशंसनीय है कि भानुदत्त का अनुसरण करते हुए भी नन्ददास ने स्वविवेक का परिचय दिया है। इसके साथ ही उन्होंने लक्षण और उदाहरण दोनों को एक ही में मिलाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनकी स्पष्टता में कहीं बाधा नहीं उत्पन्न होती।

नन्ददास भक्त और कवि ही नहीं बल्कि काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ आचार्य भी थे। उन्हें संस्कृत साहित्य-सिद्धान्तों तथा उसकी विशद परम्परा का सम्यक ज्ञान था जिसके आधार पर उन्होंने हिन्दी-रीति ग्रंथों का प्रणयन किया है। यह बात अलग है कि उन्होंने काव्य के सर्वांग-वर्णन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं किया लेकिन जिन विषयों को अपने विवेचन में शामिल किया उसमें अपनी पूरी निष्ठा एवं तन्मयता प्रदर्शित की। आचार्य केशवदास की तरह नन्ददास का भी इन ग्रंथों की रचना का उद्देश्य किसी न किसी को काव्य रीति की शिक्षा देना था। 'रसमंजरी' लिखने की प्रेरणा उनका वह मित्र था जिसने नायक-नायिका भेद नहीं सुना था-''एक मीत हम सों अस गुन्यो/मैं नायिका-भेद नहिं सुन्यो'' (नन्ददास ग्रंथावली, पृ. 126)। 'अनेकार्थ मंजरी' तथा 'मानमंजरी' की रचना उन्होंने उनके लिए की है जो संस्कृत शब्दों के उच्चारण और उनके अर्थ-ज्ञान में असमर्थ थे-''उचरि सकत नहिं संस्कृत/अर्थ ज्ञान असमर्थ। तिन हित 'नंद' सुमति जथा/भाषा कियो सुअर्थ।।'' (वही पृष्ठ 41)। 'रूपमंजरी' में 'पूर्वराग', 'विरह मंजरी', में 'प्रवास' तथा 'मान मंजरी' में 'मान' (गूँथनि नाना नाम को/अमरकोष के भाय। मानवती के मान पर/मिले अर्थ सब आय।।'' वही, पृष्ठ 66)। का वर्णन भी कवि ने किसी न किसी को शिक्षित करने के उद्देश्य से ही किया है। जाहिर है-आचार्य का अर्थ होता है-शिक्षक। नन्ददास ने काव्य-रीति की शिक्षा देने के लिए

ही उपर्युक्त ग्रंथों की रचना की है। इसलिए वे कवि होने के साथ ही साथ एक आचार्य भी हैं। उनकी गणना केशवदास, मतिराम, देव आदि आचार्यों की परम्परा में होनी चाहिए। यहां यह उल्लेख्य है कि नन्ददास के पहले लिखे गए हिन्दी रीति ग्रंथों में कृपाराम की हिततरंगिणी, मोहन लाल मिश्र का श्रृंगार-सागर आदि ही हैं। करणेश बंदीजन, बलभद्र मिश्र, केशवदास आदि प्राय: इनके समकालीन थे। रहीम का 'बरवै नायिका भेद' इनके बाद ही लिखा गया था। नन्ददास के पूर्व की रचनाओं में रीति-निरूपण की अपेक्षा आचार्यों ने अपने कवि-कौशल का प्रदर्शन अधिक किया है जिससे वहाँ लक्षणों तथा उदाहरणों की अस्पष्टता भ्रम उत्पन्न करती है किन्तु नन्ददास ने 'रसमंजरी' आदि ग्रंथों में ऐसा नहीं किया है। उन्होंने बहुत ही सुचिन्तित और सुविचारित ढंग से अपने आचार्यत्व का प्रदर्शन किया है जिससे लक्षण और उदाहरण में अस्पष्टता जैसी समस्या का अभाव दिखाई देता है।

नन्ददास ने 'रसमंजरी' में नायक-नायिका भेद तथा हेला, हाव-भाव आदि का वर्णन किया है। इसका आधार संस्कृत के भानुदत्त की 'रसमंजरी' है जिसे कवि ने स्वयं स्वीकारा है -

''रसमंजरी अनुसार कै, 'नंद' सुमति अनुसार।
बरनत बनिता-भेद जँह, प्रेम सार विस्तार।''

(नन्ददास, ग्रंथावली, पृ.127)

संस्कृत तथा हिन्दी के ग्रंथों में नायिकाओं के जितने भेदोपभेद किये गये हैं तथा उनका जितना विशद वर्णन हुआ है उतना नायकों का नहीं। नन्ददास ने भी नायिका-भेद की तुलना में नायक-भेद का वर्णन कम ही किया है। उनकी दृष्टि नायिका-भेद पर अधिक रही है। ग्रंथ के अंत में हेला, हाव,भाव तथा रति का संक्षिप्त वर्णन है। फिर भी 'रस मंजरी' इस अर्थ में प्रशंसनीय है कि भानुदत्त का अनुसरण करते हुए भी नन्ददास ने स्वविवेक का परिचय दिया है। इसके साथ ही उन्होंने लक्षण और उदाहरण दोनों को एक ही में मिलाकर इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि उनकी स्पष्टता में कहीं बाधा नहीं उत्पन्न होती। किसी एक कवि ने अज्ञात यौवना नायिका की परिभाषा इस प्रकार दी है -''निज तन जोबन आगमन, जो नहिं जानत नारि/सो अज्ञात सुजोबना बरनत कवि निरधारि।'' इसकी तुलना में नन्ददास की 'रसमंजरी' की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जिनमें नायिका के आगत यौवन-चिह्न के अज्ञात का वर्णन करते हुए कवि अज्ञात यौवना नायिका की जो परिभाषा करता है उसमें उदाहरण की कोई जरूरत ही नहीं महसूस होती-लक्षण पूर्णत: स्पष्ट हो जाता है -

''सखि जब सर-स्नान लै जाहीं। फूले अमलनि कमलनि माँही।
पोंछे डारति रोम की धारा। मानति बाल सिवाल की डारा।।
दीरघ नैन चलति जब क्रोने। सरद कमल दल हूँ तैं लौंने।।
तिनहि श्रवन बिच पकरयो चहै। अंबुज-दल से लागे कहै।।
इहि परकार तिया जो लहिये। सो अज्ञात जोबना कहिये।।

(नन्ददास, ग्रंथावली, पृ.128)

नन्ददास ने 'रस मंजरी' में नायिका-भेद का निरूपण करते हुए तीन प्रकार की नायिकाओं -स्वकीया, परकीया और सामान्या का नामोल्लेख तो किया है लेकिन उनका लक्षण नहीं दिया है। इन तीनों के फिर तीन प्रकारों-मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा का उल्लेख है। तत्पश्चात मुग्धा के दो भेद नवोढ़ा और विश्रब्ध नवोढ़ा के रूप में किये गये हैं -

''जग मैं जुवती तय परकार। करि करता निज रस-बिस्तार।।
प्रथम स्वकीया पुनि परिकीया। इक सामानि बखानी तिया।।
ते पुनि तीन तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ बिहार।।
मुग्धा हू पुनि द्वै बिधि गनी। ज्यों-उत्तर-उत्तर रस सनी।।
प्रथमहि मुग्ध नउढ़ा होय। पुनि विश्रब्ध नउढ़ा सोय।।''

(वही, पृ.127)

उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि नन्ददास ने स्वकीया, परकीया और सामान्या का लक्षण नहीं दिया है। स्वभाव के अनुसार किये जाने वाले नायिकाओं के उत्तम, मध्यम तथा अधम भेदों की ओर भी उनका कोई ध्यान नहीं है। मुग्धा के दो भेदों का संकेत कर उन्होंने उनका लक्षण देना प्रारंभ कर दिया है। 'रस मंजरी' में मुग्धा नवोढ़ा को उन्होंने इस प्रकार परिभाषित किया है -

''जिहि तन नव जोबन अंकुरै। लाज अधिक तन मन संकुरै।।
अलि आधीन होय रति जाकैं। भूषन रूचि तैसी नहिं ताकैं।।
प्रीतम जब कर-पंकज धरै।। बल करि सेज निवेसित करै।।
क्रोड़ी करि सब अंगनि गहै। तदपि सुतिय वह गवन्यो चहै।।
तन करि भागै मन करि रमै। कहि न जाय जस बैसँधि समै।।
जो पारिदि कहुँ कर थिर करै। सो नउढ़ बाला उर धरै।।

(वही, पृ.127)

नन्ददास ने मध्या तथा प्रौढ़ा नायिकओं के धीरा, अधीरा तथा धीरा-धीरा भेद किया है। मुग्धा में धीरादिक लक्षण की बात स्वीकारते हुए उन्होंने यह कहा कि वे स्पष्ट नहीं होते-''मुग्धा मैं धीरादिक लच्छिन/प्रगट नहीं पै लखैं विचच्छिन।'' (वही, पृष्ठ 129)। किन्तु मध्या धीरादिक लक्षणों का स्पष्ट पता चलता है -''मध्या मैं ते प्रगट जनावैं। पल्लव कली फूल होय आवै।'' (वही) नन्ददास की 'रसमंजरी' में संस्कृत के भानुदत्त की 'रसमंजरी' की अनेक पंक्तियों के अनुवाद मिलते हैं। उदाहरण के लिए मध्या नायिका के बारे में भानुदत्त का कथन है-''समान-लज्जा-मदना मध्या।' नन्ददास ने इसका अनुवाद किया है-'लज्जा मदन समान सुहाई'। भानु कवि ने प्रौढ़ा नायिका का लक्षण निरूपित करते हुए लिखा-'पति मात्र विषयक केलि कलाप कोविंदा प्रगल्भा' नन्ददास ने अपनी 'रसमंजरी' में इसे इस प्रकार वर्णित किया है -

''पूरन जोबन है गहगोरी। अधिक अनंग लाज तिहि थोरी।।
केलि कलाप कोविदा रहै। प्रेम भरी मद-गज जिमि चहै।।
दीरघ रैनि अधिक कै भावै। भोर कौं नाम सुनत दुख पावै।।
अति प्रगल्भ बैनी रस रैंनी। सो प्रौढ़ा प्रीतम सुख दैनी।।''

(वही, पृ.128)

मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा नायिकाओं के अतिरिक्त नन्ददास ने सुरति गोपना, वाग्विदग्धा, लक्षिता का भेदोपभेद सहित वर्णन किया है। प्रोषित पतिका, खंडिता, कलहांतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासकसज्जा, अभिसारिका, स्वाधीन वल्लभा तथा प्रीतगमनी नायिकाओं का सरस एवं सांगोपांग वर्णन भी 'रसमंजरी' में हुआ है। अभिसारिका के बारे में नन्ददास का कहना है कि उसमें रूप से अधिक बुद्धि की अपेक्षा रहती है -

''समय जोग पट भूषन धारै। पिय अभिसारि आप अभिसारै।।
रूप अधिक बुधि की अधिकाई। अधिक चोप तें अधिक सुहाई।।
उठि चलै कहति पिया पै जोई। अभिसारिका कहावै सोई।।''

(वही, पृष्ठ 137)

नन्ददास ने चार प्रकार की अभिसारिकाओं का वर्णन 'रसमंजरी' में किया है - मुग्धा अभिसारिका, मध्या अभिसारिका, प्रौढ़ा अभिसारिका और परकीया अभिसारिका। इसी तरह स्वाधीन पतिका के अन्तर्गत कवि ने मुग्धा स्वाधीनपतिका, मध्या स्वाधीनपतिका, प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका और परकीया स्वाधीन पतिका का वर्णन किया है। यहां मुग्धा स्वाधीनपतिका का लक्षण प्रस्तुत है जिससे नन्ददास की वर्णन-क्षमता का बोध होता है -

''मो कटि तैसी कृस नहिं भई। अंग कांति कछु अति नहिं लई।
उरजनि नहिन गरिमता तैसी। बचन चातुरी फुरी न वैसी।।
गति न मंद कछु भई सुहाई। नैनन नहिन बक्रिमा आई।।
ऐपरि पिय मनमोही काँही। कारन कवन सुजानति नाहीं।।
इहि बिधि सखि प्रति बरसै सुधा। है स्वाधीन वल्लभा मुग्धा।।''

(वही, पृष्ठ 138)

रीति ग्रंथों में नायिका-भेद का जितना विशद और व्यापक वर्णन हुआ है उतना नायक-भेद का नहीं जबकि प्रकृति, धर्म, वय, अवस्था आदि की दृष्टि से जितने भेद नायिकाओं के हो सकते हैं उतने ही भेद नायकों के भी होने चाहिए। कुछ आचार्यों ने नायक-भेद का विस्तृत वर्णन किया भी है लेकिन अधिकांश ने इस विषय में उतनी रूचि प्रदर्शित नहीं की है। नन्ददास ने भी 'रसमंजरी' में नायिका-भेद की अपेक्षा नायक-भेद के लिए कम ही स्थान दिया है। उन्होंने मात्र

तेईस चौपाइयों में कुल चार प्रकार के नायकों का उल्लेख किया है - धृष्ट, शठ, दक्षिण और अनुकूल नायक-

''नाइक बरनें चारि प्रकार। प्रमदा प्रेम बढ़ावन हार।
एक धृष्ट, इक सठ, इक दच्छिन। इक अनुकूल सुनहिं अब लच्छिन।।

(वही, पृष्ठ 140)

धृष्ट नायक ढीठ होता है। वह अपनी विवाहिता पत्नी के समक्ष बार-बार अपराध करता है। बार-बार रोके जाने पर भी नहीं मानता-''करि अपराध प्रिया ढिग आवै/निधारक भए बात बहरावै/चपरि सेज पर सोवै जोई/ नाइक धृष्ट कहावै सोई।।'' (वही, पृ.140) शठ नायक अपराधी होकर भी कामिनी को ठगने में सदैव चतुराई दिखाता है -

''बाल-भाल में तिलक बनावै। गुहि गुहि फूल माल पहिरावै।।
मकर पत्रिका रचै कपोल। बोलत जाय भावते बोल।।
किंकिनि बंधन मिस करि टोरै। छल करि नीबी बंधन छोरै।।
इहि बिधि रमनी-रमन जु होई। कहत है कवि सठ नाइक सोई।।''

(नन्ददास ग्रंथावली, पृष्ठ 140)

दक्षिण नायक वह माना गया है जो अपनी सभी पत्नियों के प्रति समान स्नेह, समान अनुराग रखता है-''जब ललना मंडल मैं आवै/अति अनुराग भर्‌यो छवि पावै।'' (वही, पृष्ठ 140)। अनुकूल नायक वह है जो सदैव अपनी पत्नी में ही अनुरक्त रहे। अन्य सुन्दरी की स्वप्न में भी कामना न करे। अनुकूल नायक के लिए नन्ददास ने श्रीराम का उदाहरण दिया है जो वनगमन के समय सीता के कष्टों को कम करने के लिए धरती, सूर्य, पवन, दण्डकारण्य आदि से प्रार्थना करते रहते हैं -

''नित ही तिय के रस बस रहै। अवर सुन्दरी सपन न चहै।।
करकस ठौर प्रिया जब चलै। तिहि दुख ताकौ हिय कलमलै।।
ज्यों श्रीराम चले बन मैं। सिय कै चलत कहत यौं मन मैं।।
हे अवनी तुम मृदु तन धरौ। हे दिनकर तुम तपति न करौ।।
अहो पवन तुम तृन न बहाऊ। रे नग मग तें बाहिर जाऊ।।
रे दण्डक वन नियरो आय। चलि न सकति सिय कोमल पाय।।
इहि परकार रहै रससान्यो। सोइ नाइक अनुकूल बखान्यो।।''

(वही, पृष्ठ 141)

नन्ददास ने 'रसमंजरी' की बारह चौपाइयों में भाव, हाव, हेला तथा रति का वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त 'रूपमंजरी' ग्रंथ में भी इनका प्रसंगतः उल्लेख है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि भानुदत्त ने अपनी 'रसमंजरी' में केवल सात्विक भावों तथा श्रृंगार रस का विवेचन किया है। उन्होंने

हाव, भाव, आदि पर कोई विचार नहीं किया है। नन्ददास को अपनी 'रसमंजरी' में हेला, हाव, भाव आदि के वर्णन के लिए आचार्य विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' को आधार बनाना पड़ा है। विश्वनाथ ने 'हाव' का लक्षण देते हुए लिखा है – 'भ्रूनेत्रदिविकारैस्तु संभोगेच्छा प्रकाशकः/हाव एवाल्पसंलक्ष्य विकारो हाव उच्यते।' नन्ददास ने इसका आधार ग्रहण करते हुए इससे भी कहीं अधिक सुगम लक्षण प्रस्तुत कर दिया है –''नैन बैन जब प्रगटै भाव/ते भल सुकवि कहत हैं हाव।'' (वही, पृष्ठ 141)। नन्ददास ने प्रेम की प्रथम अवस्था को 'भाव' कहा है –

''प्रेम की प्रथम अवस्था आई। कवि जन भाव कहत हैं ताई।''

(वही, पृष्ठ 141)

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने 'हेला' को परिभाषित करते हुए लिखा है– 'हेलात्यन्तसमालक्ष्यो विकारः स्यात्स एव तु'–अर्थात मनोविकार के अतिस्फुटता से लक्षित होने के भाव को 'हेला' कहते हैं। इसी को आधार बनाते हुए नन्ददास ने 'रसमंजरी' में 'हेला' का अत्यंत सुगम लक्षण प्रस्तुत किया है–

''खन-खन बाँन बनायौ करै। बार-बार कर दर्पन धरै।।
अति श्रृंगार मगन मन रहै। ताकहु कवि हेला छबि कहै।।''

(वही, पृष्ठ 141)

नन्ददास ने 'रसमंजरी' में 'रति' के साथ सात्विक भावों का उल्लेख भी किया है –

''जाके हिय मैं रति संचरै। निरस वस्तु सब रसमय करै।
जैसे निम्बादिक रस जिते। मधुर हौहिं मधु मैं मिलि जितै।।
जदपि बिघन आवहिं बहु भारे। जारति रस के मेटन हारे।।
तदपि न भृकुटी रंचक मटकै। एक रूप चित रस कहुँ प्रगटै।।
स्तंभ स्वेद पुनि पुलकित अंग। नैननि जलकन अरू स्वरभंग।।
तब बिबरन हिय कंप जनावै। बीच-बीच मुरझाई आवै।।
इहि प्रकार जाकौ तन लहिए। सो वह रंग भरी रति कहिये।।''

(वही, पृष्ठ 141)

नन्ददास ने यद्यपि पृथक रूप से श्रृंगार रस का विवेचन नहीं किया है किन्तु उन्होंने अपने काव्यों की रचना इस ढंग से की है कि उनमें श्रृंगार रस का स्वरूप स्वतः प्रकट हो गया है। इस दृष्टि से 'रूपमंजरी', 'विरहमंजरी', 'रास पंचाध्यायी' आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है जिनमें संयोग श्रृंगार के स्पर्शन, आलिंगन, चुम्बन आदि तथा वियोग के पूर्वराग, मान और प्रवास आदि का भेदोपभेद सहित वर्णन है। 'रूपमंजरी' के मिलन के प्रसंग में उनका संयोग श्रृंगार–वर्णन अत्यंत मनोहारी हो उठा है –

''प्रथम समागम लज्यति तिया। अंचल पवन सिरावति दिया।।
दीप न बुझहि बिहँसि बर बाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला।।
भोजन भूख मिलत मैं लहै। ऐ परि इन सरि परत न कहै।।
प्रेम पुलक अंतर तिहि काला। सो अंतर सहि सकति न बाला।।
चित बिबधान सहति नहिं सोई। रूपमंजरी अस रस भोई।।''

(नन्ददास ग्रंथावली, पृष्ठ 124)

संयोग श्रृंगार की अपेक्षा वियोग श्रृंगार के वर्णन में नन्ददास का आचार्यत्व अधिक मुखरित है। उन्होंने अपने अलग-अलग ग्रंथों में विप्रलंभ के चार भेदों में से पूर्वराग, मान और प्रवास का विस्तृत वर्णन किया है। 'रूक्मिणी मंगल' तथा 'रूपमंजरी' में 'पूर्वराग' का वर्णन है तो 'मानमंजरी' में 'मान' का। 'विरहमंजरी' में 'प्रवास' का वर्णन हुआ है। चौथे भेद 'करूण' का वर्णन नन्ददास ने संभवत: इसलिए नहीं किया होगा कि वियोगजन्य तड़प का आनंद मरणोपरांत असंभव है।

नन्ददास ने 'रूक्मिणी मंगल' तथा 'रूपमंजरी' में मिलन से पहले का अनुराग अर्थात 'पूर्वराग' का वर्णन किया है। पूर्वराग उत्पन्न होने का कारण चित्र दर्शन, 'स्वप्नदर्शन', 'साक्षात्दर्शन' अथवा गुण-श्रवण है। 'रूक्मिणी मंगल' में रूक्मिणी के पूर्वानुराग का आधार श्रीकृष्ण का गुण-श्रवण है -

''जब तैं तुम्हारे गुनगन मुनि जन नारद गाये।
तब तैं औरू न भाये अमृतैं अधिक सुहाये।।
मैं तुम मन करि बरे कुँवर गिरिधरन पियारे।।
हौं भई तुम परिचरि, नाथ! तुम भये हमारे।।''

(नन्ददास ग्रंथावली, पृष्ठ 179)

'रूपमंजरी' में नन्ददास ने गुण-श्रवण तथा स्वप्न-दर्शन दोनों रूपों में 'पूर्वराग' का उत्पन्न होना वर्णित किया है। इस कथा काव्य की नायिका रूपमंजरी अपनी सखी इन्दुमती द्वारा कृष्ण के रूप-सौन्दर्य तथा गुणों का जब वर्णन सुनती है-''इक सुनियत सब लायक नायक/गिरिधर कुँवर सदा सुखदायक।'' तब उसके हृदय में प्रेम का बीज अंकुरित हो उठता है और वह प्रियतम को पाने की व्याकुलता में अपने मन के हाथों से ही उनका पैर पकड़ने लगती है -''निसिदिन तिय बिनती करति, और न कछु सहाय। मन के हाथनि नाथ के पुनि-पुनि पकरति पाय।'' (नन्ददास ग्रंथावली, पृष्ठ 110)। मिलन की उत्कंठा में ही उसे सपने में श्रीकृष्ण के दर्शन भी होते हैं - ''सपुन माझ इक सुन्दर नाइक/पायो कुँवरि आपुनी लाइक।' (वही)। इस तरह नन्ददास ने अपने ग्रंथों में 'पूर्वराग' का सुन्दर वर्णन किया है।

विप्रलंभ के 'मान' भेद का वर्णन नन्ददास ने 'मान मंजरी' में किया है। यह ग्रंथ पर्याय कोष भी है और इसमें आदि से अंत तक मानिनी नायिका की कथा भी चलती है। कोष-ग्रंथ होते हुए भी इसके कथा-प्रवाह में कोई बाधा उत्पन्न नहीं हुई है। इसकी कथा बस इतनी है कि राधा

अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से रूष्ट हैं। वे मान किये बैठी हैं। दूती मध्यस्थता कर उन्हें मनाने का प्रयत्न करती है तथा अंत में राधा-कृष्ण का मिलन करवाने में वह सफल भी होती है -''यों राधा माधव मिले परम प्रेम हरषाइ'' (वही, पृष्ठ 93)। 'मानमंजरी' ग्रंथ की विशेषता यह है कि इसके प्रत्येक दोहे की प्रथम पंक्ति में शब्द के पर्यायवाची रूप हैं तो दूसरी पंक्ति में उसका प्रयोग दूती द्वारा राधा के मान-मनावन तथा श्रृंगार-वर्णन के लिए हुआ है। नन्ददास ने इसका स्पष्टीकरण भी दिया है -'' गूँथनि नाना नाम को, अमरकोष के भाय/मानवती के मान पर, मिले अर्थ सब आय।'' (वही, पृष्ठ 66)। नन्ददास ने जिस विलक्षण दूती की कल्पना की है वह अपने दूतत्व-कार्य में इतनी निपुण है कि पहले वह राधा के रूप-सौन्दर्य की अतिशय प्रशंसा करती है-''तरूनी, रमनी, सुन्दरी, तनु उरज पुनि सोइ/तिय तोसी तिहुँ लोक में, रची बिरंचि न कोइ।'' (वही, पृष्ठ 75)। तत्पश्चात श्रीकृष्ण की वह प्रशंसा ही नहीं करती बल्कि विधाता द्वारा रचित अनुपम जोड़ी का उल्लेख कर राधा-कृष्ण को मिला देने में सफल भी होती है -

''सुभग, सुसम, बन्धुर, रूचिर, कांत, काम कमनीय।
रम्य, सुवेसरू भव्य पुनि, दर्शनीय रसनीय।
तैसाइ सुन्दर बर कुँवर, नागर नगधर पीय।
जोरि रची बिधना निपुन, एक प्रान तनु बीय।।''

(नन्ददास ग्रंथावली, पृष्ठ 75)

नन्ददास ने 'विरहमंजरी' में विप्रलंभ के 'प्रवास' नामक भेद का वर्णन किया है। शास्त्रों में कार्य, शाप अथवा संभ्रम के कारण नायक के अन्य देश में चले जाने को 'प्रवास' कहा गया है। 'विरह मंजरी' में ब्रजबाला को संयोगावस्था में ही वियोग की काल्पनिक अनुभूति होती है। उसे लगता है कि कृष्ण द्वारिका चले गए हैं। वह इस भ्रम में ही अकुलाती और व्याकुल होती है तथा अपनी विरह-दशा चन्द्रमा से निवेदित करती है-''अहो, चंद रस-कंद हो, जात आहि उहि देस/द्वारावति नँद नँद सौं कहियो बलि संदेश।'' (नन्ददास ग्रंथावली, पृष्ठ 142)। यहां नन्ददास के आचार्य रूप की मौलिक उद्भावना देखने को मिलती है जब वे ब्रजबाला का विरह चार प्रकार का बतलाते है -''ब्रज मैं बिरह चारि परकारा। जानत हैं जो जाननहारा।'' इन चारों के नाम हैं - प्रत्यक्ष, पलकान्तर, वनान्तर और देशान्तर। इनका अलग-अलग लक्षण भी बताया गया है। नन्ददास के अनुसार प्रिय के पास रहते हुए भी प्रिय के प्रगाढ़ प्रेम की उत्कट लालसा में प्रिय के वियोग का क्षणिक भ्रम प्रत्यक्ष विरह है। पलक मारने में जितनी देर लगती है उतनी देर के लिए भी प्रिय-दर्शन से वंचित होना पलकान्तर विरह है। कृष्ण जब गोचारण के लिए वन में जाते हैं उस समय का वियोग वनान्तर विरह के रूप में कल्पित है। प्रिय के परदेश चले जाने पर देशान्तर विरह होता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि रीति ग्रंथों में वियोग के चार भेद पूर्वराग, मान, प्रवास तथा करूण बताये गये हैं। नन्ददास ने 'विरहमंजरी' में जिन चार भेदों का उल्लेख किया है उनमें दो वनान्तर तथा देशान्तर रीतिग्रंथों में वर्णित एक भेद प्रवास-वियोग के अंतर्गत आ जाते हैं किन्तु प्रत्यक्ष और पलकान्तर किसी के अंतर्गत नहीं आते। इस तरह यह कहा जा सकता है कि प्रत्यक्ष और पलकान्तर वियोग की कल्पना नन्ददास के आचार्यत्व की एक नई उद्भावना है।

प्रकृति के क्रिया-व्यापारों तथा वस्तुओं को विरह-विकलता का उद्दीपन बनाने की कवि-परम्परा का निर्वाह नन्ददास ने भी किया है। संयोगावस्था की सुखप्रद वस्तुओं का वियोग में

दुखदायी हो जाना, संयोगकाल की स्मृतियों से हृदय को कष्ट पहुंचना तथा सृष्टि के सभी उपादानों से दुख का अनुभव करना वियोग वर्णन की स्वाभाविक कवि रूढ़ियां हैं। नन्ददास ने भी प्रकृति का उद्दीपक रूप 'षड्ऋतु' तथा 'बारहमासा' में चित्रित किया है। 'रूपमंजरी' का विरह वर्णन षड्ऋतुओं के अन्तर्गत हुआ है। प्रिय से मिलन नहीं होने की स्थिति में रूपमंजरी की प्रसन्नता दु:ख में, हर्ष विषाद में तथा फ्रुल्लता करूणा में परिणत हो गई है। उसकी भूख प्यास मर गई है। आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही है। बार-बार स्वर-भंग हो रहा है। बीच-बीच में उसे मूर्च्छा का शिकार भी होना पड़ता है। अश्रु, प्रलाप, जड़ता, उन्माद आदि के प्राकट्य से उसकी दशा अत्यंत दयनीय हो गई है। उसका विरह-ताप इतना बढ़ गया है कि वह किसी के पास बैठकर इस भय से श्वाँस तक नहीं ले पाती कि उसकी उष्णता का पता चलने पर यदि कोई पूछ बैठे तो वह क्या उत्तर देगी ? किसी के कमल-पुष्प देने पर वह इस आशंका से उसे नहीं छूती कि कहीं उसके विरह ताप से वह जल न जाय इसलिए उसे अपने पास रखवा लेती है -

"बाल अर्क सम बिरह जनायो। तिय तन तनक तपति ह्वै आयो।।
आन की ढिग उसास नहिं लेई। मूँदे मुँह तिहि उतरू देई।।
तपत उसासनि जौ कोऊ लहै। बाला बिरहिनी का तब कहै।।
जो कोउ कमल फूल पकरावै। हाथ न छुवै निकट धारवावै।।

(नन्ददास ग्रंथावली, पृष्ठ 115)

विरहमंजरी' में नन्ददास ने 'बारहमासा' का जो वर्णन किया है वह रीति परम्परा के अनुकूल है। विरहिणी के हृदय पर प्रत्येक महीने में प्राकृतिक क्रिया-व्यापारों के पडने वाले प्रभावों को कवि ने जिस सहजता, स्वाभाविकता और सरसता के साथ वर्णित किया है उससे उसका शास्त्र और लोक ज्ञान सूचित होता है। नन्ददास ने कई स्थलों पर ऊहात्मक वर्णन भी किया है किन्तु उसमें बिहारी की सी अस्वाभाविकता नहीं है। प्रोषित पतिका नायिका की कामदशाओं के चित्रण में अनुभूति की सहजता के साथ आलंकारिकता के समावेश ने जहां काव्य सौन्दर्य में अभिवृद्धि की है वहीं कवि के आचार्यत्व को प्रतिष्ठित भी किया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि नन्ददास भक्त और कवि ही नहीं बल्कि एक आचार्य भी थे। उन्होंने काव्यशास्त्र का विधिवत अध्ययन किया था। साहित्यानुरागियों को काव्य-रीति की शिक्षा देने के लिए उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की थी। रस की प्रतिष्ठा, नायक-नायिका भेद, विप्रलंभ श्रृंगार संबंधी कुछ नवीन उद्भावनाएं, पर्याय कोष आदि का निर्माण नन्ददास के आचार्यत्व की प्रतिष्ठा के निकष हैं।

डॉ. व्यास मणि त्रिपाठी, एन. जी. 22, टाइप – 5, चक्कर गाँव, पोर्ट ब्लेयर,
अंडमान – 744112, मो. 9434286189

✧ ✧ ✧

साहित्य की चोरी से सस्ती लोकप्रियता: समस्या और समाधान

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल'

कानून रूप से भी देखा जाये तो साहित्यिक चोरी धोखाधड़ी की श्रेणी में भी आता है। इसके गंभीर परिणाम भी हो सकते हैं। अगर आप किसी अन्य के रचनात्मक कार्य का उपयोग करते हैं, तो आप को उनके हर स्रोत का श्रेय देना होगा, इसलिए ऑनलाइन या मुद्रित सामग्री के लिए फुटनोट या उद्धारण का उपयोग करें। किसी भी समय आप किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखी, रचना, आकर्षित या आविष्कार किए गए किसी भी चीज का हिस्सा या किसी का उपयोग करते हैं, तो आपको उन्हें क्रेडिट देना होगा।

इंटरनेट की दुनिया ने हिंदी या कहे प्रत्येक भाषा के साहित्य और लेखन को जनमानस के करीब और उनकी पहुँच में ला दिया है, इससे रचनाकारों की लोकप्रियता में भी अभिवृद्धि हुई है। किन्तु इन्ही सब के बाद उनके सृजन की चोरी भी बहुत बड़ी है। जिन लोगों को लिखना नहीं आता या सस्ती लोकप्रियता के चलते वो लोगो अन्य प्रसिद्द लोगो की रचनाओं को तोड़ मरोड़ कर या फिर कई बार तो सीधे उनका नाम हटा कर खुद के नाम से प्रचारित और प्रकाशित भी करवा लेते है। ऐसी विकट स्थिति में असल चोर द्वारा कई बार इतना प्रचार कर दिया जाता है कि कई बार तो मूल रचनाकर को भी लोगो साहित्य चोर समझ लेते है। साहित्यिक सामग्रियों की चोरी कर अपने प्रकाशित साहित्य या सन्दर्भ में शामिल कर लेना, अखबारों या सोशल मीडिया में अपने नाम से प्रचारित करना, दूसरे की कविता वे सरेआम मंचों से सुनाना, साझा संग्रहों में स्वयं के नाम से दूसरे की रचनाएं प्रकाशित करवाना आदि साहित्य चोरो का प्रिय शगल बन चुका है।

किसी दूसरे की भाषाशैली, उसके विचार, उपाय, आदि का अधिकांशत: नकल करते हुए अपने मौलिक कृति के रूप में प्रकाशन करना साहित्यिक चोरी की श्रेणी में आता है। यूरोप में अठारहवीं सदी के बाद ही इस तरह का व्यवहार अनैतिक व्यवहार माना जाने लगा था, इसके पूर्व की शताब्दियों में लेखक एवं कलाकार अपने क्षेत्र के श्रेष्ठ सृजन की हूबहू नकल करने के लिये प्रोत्साहित किये

जाते थे। साहित्यिक चोरी तब मानी जाती है, जब हम किसी के द्वारा लिखे गए साहित्य को बिना उसका सन्दर्भ दिए अपने नाम से प्रकाशित कर लेते हैं। आज जब सूचना प्रौद्योगिकी का विस्तार तेजी से हुआ है, ऐसे में पूरा विश्व एक वैश्विक गाँव में बदल गया गया है और ऐसे में साहित्य चोरों के अनैतिक कार्य आसानी से पकड़ में आ जाते हैं।

इस समस्या को 'प्लेगरिज्म' कहा जाता है और यह अकादमिक बेईमानी है। प्लेगरिज्म कोई अपराध नहीं है बल्कि नैतिक आधार पर तो अमान्य है। इंटरनेट से कोई लेख डाउनलोड कर लेना, किसी और को अपने लेखन के लिए काम पर रख लेना, दूसरे के विचारों को अपने विचार दिखाने का प्रयास करना भी साहित्यिक चोरी मानी जाती है।

कानून रूप से भी देखा जाये तो साहित्यिक चोरी धोखाधड़ी की श्रेणी में भी आता है। इसके गंभीर परिणाम भी हो सकते हैं। अगर आप किसी अन्य के रचनात्मक कार्य का उपयोग करते हैं, तो आप को उनके हर स्रोत का श्रेय देना होगा, इसलिए ऑनलाइन या मुद्रित सामग्री के लिए फुटनोट या उद्धारण का उपयोग करें। किसी भी समय आप किसी अन्य व्यक्ति द्वारा लिखी, रचना, आकर्षित या आविष्कार किए गए किसी भी चीज का हिस्सा या किसी का उपयोग करते हैं, तो आपको उन्हें क्रेडिट देना होगा। यदि आप लेखन या विचारों को चोरी करते हैं और उन्हें अपने ही रूप में बंद करते हैं, तो आप पकड़े जा सकते हैं।

क्या कहता है कानून :

बौद्धिक सम्पदा अधिकार बौद्धिक सम्पदा (Intellectual property) किसी व्यक्ति या संस्था द्वारा सृजित कोई संगीत, साहित्यिक कृति, कला, खोज, प्रतीक, नाम, चित्र, डिजाइन, कापीराइट, ट्रेडमार्क, पेटेन्ट आदि को कहते हैं। जिस प्रकार कोई किसी भौतिक धन (फिजिकल प्रापर्टी) का स्वामी होता है, सी प्रकार कोई बौद्धिक सम्पदा का भी स्वामी हो सकता है। इसके लिये बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रदान किये जाते हैं। आप अपने बौद्धिक सम्पदा के उपयोग का नियंत्रण कर सकते हैं और उसका उपयोग कर के भौतिक सम्पदा (धन) बना सकते हैं। इस प्रकार बौद्धिक सम्पदा के अधिकार के कारण उसकी सुरक्षा होती है और लोग खोज तथा नवाचार के लिये उत्साहित और उद्यत रहते हैं। बौद्धिक संपदा कानून के तहत, इस तरह बौद्धिक सम्पदा का स्वामी को अमूर्त संपत्ति के कुछ विशेष अधिकार दिए है, जैसे कि संगीत, वाद्ययंत्र साहित्य, कलात्मक काम, खोज और आविष्कार, शब्दों, वाक्यांशों, प्रतीकों और कोई डिजाइन आदि।

इस तरह की साहित्यिक चोरियां इंटरनेट आम हो चली है, कई चोरो के हौसले तो इतने बुलंद है कि वे लोगो की रचनाओं में कुछ एक शब्दों का हेर फेर करके खुद की पुस्तक भी मुद्रित करवा लेते है। इस तरह चोरी से बचने के लिए साहित्यकारों को भी कुछ प्रबंध करना होंगे जैसे–

1. सबसे पहले तो अपनी मौलिक रचनाएँ अपने ब्लॉग पर मय दिनांक और समय के साथ प्रकाशित करें। ऐसा करने से आपकी रचनाओं के प्रथम प्रकाशन का सन्दर्भ और मौलिकता का साक्ष्य उपलब्ध होगा।
2. सोशल मीडिया में प्रकाशन के पूर्व रचनाएं साझा करने से बचें, अन्यथा आप सबुत देने में असमर्थ रहेंगे और साहित्यचोर उस पर खुद की मौलिकता का प्रमाण दर्ज कर लेगा।

3. यदि आपने भी किसी सन्दर्भ का उपयोग किया है तो सन्दर्भ सूचि में उसका उल्लेख जरूर करे, अन्यथा आप पर भी साहित्य चोरी का आरोप लग सकता है।
4. सोशल मीडिया में रचनाओं को हर जगह अपने ब्लॉग की लिंक या जहाँ प्रकाशित हुई है उसी सन्दर्भ के साथ साझा करें, यह चोर की मनोस्थिति पर भी प्रभाव डालेगा।
5. कही भी आपको आपकी रचनाओं की चोरी नजर आये तो तुरंत उसकी शिकायत मय पर्याप्त साक्ष्य के और स्वयं की मौलिक रचना होने के साक्ष्य के साथ नजदीकी पुलिस थाने में शिकायत दर्ज करवाएं।
6. अपनी पुस्तकें मय आईएसबीएन (ISBN) के प्रकाशित करवाएं

प्लेजरिज्म से बचने के लिए कुछ आम टिप्स :

1. शुरुआत में बिना किसी कोट, डाटा, रिपोर्ट, रिसर्च की मदद लिए अपने विचारों को लिखने की आदत डालें।
2. किसी और का आइडिया चुराने से बचने के लिए, आर्टिकल लिखने से पहले ही अपने तर्क और तथ्य तैयार कर लें। ध्यान रहे कि किसी और के आइडियाज से आपका अपना आर्टिकल तैयार नहीं हो सकता, हाँ वो आपके लेख में रेफरेंस के तौर पर जरूर हो सकते हैं।
3. याद रखिये कि निजी विचारों और तथ्यों के बीच बाल भर का फर्क होता है। इस फर्क को हमेशा दिमाग में रखे। मसलन, ''माहवारी एक ऐसी वजह है जिसके कारण भारत की 80% महिलाएं शोषण और दमन का सामना कर रही हैं। यह एक तथ्य है जिसकी सत्यता को उचित सोर्स से प्रमाणित किया जाना जरूरी है।'' ''मुझे नहीं लगता कि मेंसट्रअल लीव पॉलिसी भारत में महिलाओं की बड़ी समस्याओं को हल कर पाएगी।'' ये पूरी तरह से एक निजी विचार है जिसे सत्यापित करने की जरूरत नहीं है। लेकिन अगर आपके लेख में कोई आंकड़ा या तथ्य शामिल है तो उसका सत्यापन किया जाना बहुत जरूरी है।
4. जानकारी के लिए अन्य वेबसाइट्स और श्रोतों से कॉपी पेस्ट कर रहे हैं तो संभल जाएं। जाहिर सी बात है कि इन वेबसाइट्स और जानकारी के श्रोतों को भी अपनी मीडिया सामग्री को लेकर उतनी ही चिंता होगी जितनी की आपको है। अपने लेख में इस्तेमाल की गई जानकारियों का सोर्स लिखना कभी ना भूलें।

शिक्षा विभाग में तो आगया रेगुलेशन एक्ट

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के सचिव पी के ठाकुर ने विश्वविद्यालयों सहित छात्रों के नाम जन सूचना जारी की है कि रिसर्च और साहित्य चोरी की घटनाएं बढ़ रही हैं। इसी के चलते यूजीसी ने दूसरे के ज्ञान को अपना बनाने के मामलों पर अंकुश लगाने के लिए विशेषज्ञों की कमेटी बनाई थी, जिसकी सिफारिशों के आधार पर अब साहित्यिक चोरी रोकने के लिए रेग्यूलेशन 2017 तैयार किया गया है। इसके आधार पर रिसर्च स्कालर्स, शिक्षक या विशेषज्ञ

अपनी-अपनी राय भेज सकते हैं। यह रेग्यूलेशन नौ पन्नों का है। कमेटी ने अपनी सिफारिश में लिखा है कि साहित्य, रिसर्च की चोरी पर जीरो टॉलरेंस पॉलिसी होनी चाहिए। यदि कोई रिसर्च स्कॉलर्स दस फीसदी सामग्री की चोरी करता पकड़ा गया तो कोई जुर्माना नहीं लगेगा। चालीस फीसदी कंटेंट चुराने वाले छात्र को कोई अंक नहीं दिया जाएगा। साठ फीसदी सामग्री चोरी का इस्तेमाल करने पर रजिस्ट्रेशन तक रोकने की सिफारिश की गई है।

यदि कोई शिक्षक 40 फीसदी तक साहित्यिक चोरी करता पकड़ा जाता है तो लिखित सामग्री को हटाने के साथ ही एक साल तक उसके प्रकाशन पर भी रोक लगेगी। 60 फीसदी से अधिक की चोरी करने पर लिखित सामग्री हटाने के साथ-साथ तीन साल तक प्रकाशन पर रोक लगाने की भी तैयारी है। वहीं, ऐसे शिक्षक को तीन साल तक के लिए अंडरग्रेजुएट, पोस्ट ग्रेजुएट, एमफिल और पीएचडी स्कॉलर्स का गाइड न बनाने की भी सिफारिश की गई है। यदि छात्र गलती करता है तो रजिस्ट्रेशन पर रोक लग जाएगी, जिससे उसकी डिग्री भी ब्लॉक होगी। वहीं, शिक्षक यदि गलती करता है कि उसे एक साल तक प्रकाशन पर रोक के साथ वेतनवृद्धि रुकेगी। वहीं, यदि बार-बार गलती की जाती है तो उसे नौकरी से निकालने का भी प्रावधान होगा।

एमफिल और पीएचडी रिसर्च स्कॉलर्स यदि अपनी थीसिस या रिसर्च में किसी व्यक्ति द्वारा तैयार सामग्री का प्रयोग करते हैं तो उन्हें इसकी जानकारी देनी होगी। यदि कोई स्कॉलर साहित्यिक चोरी करता पकड़ा जाता है तो उसका रजिस्ट्रेशन तक रद्द हो सकता है। वहीं, यदि शिक्षक ऐसा करता पकड़ा गया तो उसके इंक्रीमेंट, प्रकाशन पर रोक लग सकती है। नियमों का बार-बार उल्लंघन करने पर शिक्षक की नौकरी भी जा सकती है।

इन सब के अतिरिक्त मौलिक साहित्य की कमी और साहित्य चोरी जैसी घटनाओं से भाषा की समृद्धता और लेखन शैली प्रभावित होती है। सत्य तो यह भी है कि तथाकथित साहित्य चोरों को सार्वजानिक अपमान का डर न होना भी इसका कारण है। ऐसी स्थिति में हिंदी प्रचार हेतु प्रतिबद्ध अंतरताना मातृभाषा कॉम द्वारा एक मुहीम भी चलाई जा रही है, जिसमें साहित्य चोरी की घटना को संवेदनशील मसला मान कर सप्रमाण शिकायत आने पर उस साहित्य चोर के विरुद्ध न्यायायिक दावा भी लगाया जाएगा साथ ही सोशल मीडिया पर भी बेनकाब करेगा। इसी तरह से अन्य हिन्दी साहित्यिक संस्थानों को भी आगे आना चाहिए और साहित्य चोरी के विरुद्ध एक सार्थक आवाज बन कर खड़े होना होगा, जिससे इस तरह की साहित्य चोरी पर नकेल कस कर भाषा की मौलिकता और अस्तित्व पर मंडरा रहे खतरे से बचा जा सकता है।

डॉ. अर्पण जैन 'अविचल', पत्रकार एवं स्तंभकार, सम्पर्क : 07067455455
ई-मेल : arpan455@gmail.com, वेबसाईट : www.arpanjain.com

समकालीन मलयालम और हिन्दी कविता में बदलते सामाजिक सम्बन्ध

महेष एस

विश्व के सर्वाधिक विकसित सामाजिक संबन्ध मानव का ही है। जहाँ अन्य जीव जन्तुओं का सामाजिक संबन्ध जैविक धरातल पर आधारित होते है वहीं मानव अन्य जीव जन्तुओं से परे अपने जैविक उद्विकास क्रम में बहुत सारी अद्वितीय क्षमताओं को आर्जित कर सका है। मानव शिशु अपने विकास के हर चरण में इन्हीं विशेषताओं को एक के बाद एक करके आर्जित करता जाता है।

समकालीनता बहु आयामी शब्द है। मलयालम और हिन्दी कविता में समकालीनता का अर्थ विशेष रूप से आधुनिकता के उत्तर संदर्भ के साथ जुडा हुआ है। समकालीनता आधुनिकता की अगली कडी होने पर भी आधुनिकता के हर केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों को विच्छिन्न कर के उभरी है। मलयालम के प्रसिद्ध आलोचक वत्सलन वातुशेरी के अनुसार आधुनिकता तक मलयालम कविता सवर्ण सौन्दर्य बोध का ही आबंटन किया करती थी। सवर्ण लोगों की आर्थिक स्थिति में हुए ह्रास के साथ अवर्ण तथा अल्पसंख्यकों की आर्थिक स्थिति में सुधार के कारण मलयासम के सार्वजनिक संवाद क्षेत्र में तथा उसके माध्यम से कविता में अल्पसंख्यक तथा दलित एवं स्त्री सहित हाशिएकृत विशाल समाज का प्रवेश हुआ। हिन्दु सांस्कृतिक देशीय भावना का पूर्ण रूप से रिस गयी काव्य संस्कृति का अनेक रूपों में हुए प्रस्फुटन ही उत्तर आधुनिक कविता है ''समकालीन समय में लिखी जा रही कविता के बारे में राजेश जोशी का कहना है'' इस समय जो कविता लिख रहा है वह एक ऐसा कवि है जो शताब्दियों के बीच आवाजाही कर रहा है। उसके पास पिछली सदी में बने और टूटे स्वप्न और स्मृतियाँ भी हैं और इस सदी की नई वास्तविकताएँ भी। आज के कवि को उद्योग और प्रौद्योगिकी जैसी दो अलग-अलग चरित्रों वाली विकट प्रणालियों और उसकी जटिल वास्तविकताओं के बीच आवाजाही करनी पडती है। अंत:करण विहीन मुक्त बाजार

और लोकतान्त्रिक स्पेस को दिनेदिन कम करती प्रौद्योगिकी ने समाज की गति और संरचना को ही नही बदला हैं, हर रचना की प्राख्या और उपाख्या को भी बदल दिया है।'' 2 बाहरी तौर पर देखा जाये तो समकालीनता से जुड़ी इन दोनों परिभाषाओं में विरुद्धता नजर आती है। एक तरफ आधुनिकता के केन्द्रीकरण की विरुद्ध समकालीनता की लोकतांत्रिक स्वरूप को उभारा गया है तो दूसरी तरफ समकालीनता की विकेन्द्रित स्थिति की वजह से उभर रहे फासीवादि स्वरूप को दर्शाया गया है। वास्तव में इन दोनों परिभाषाओं की तह में समकालीनता की जटिल सामाजिक संबन्धों का समाजस्य विद्यमान है। समकालीन साहित्य विरुद्धों के सामंजस्य की बृहतर कानवाज है। सही मायने में इस विरुद्धता के सामंजस्य को समझने केलिए मानवीय सामाजिक संबन्धो के स्वरूप को समझना अनिवार्य है ।

विश्व के सर्वाधिक विकसित सामाजिक संबन्ध मानव का ही है। जहाँ अन्य जीव जन्तुओं का सामाजिक संबन्ध जैविक धरातल पर आधारित होते है वहीं मानव अन्य जीव जन्तुओं से परे अपने जैविक उद्विकास क्रम में बहुत सारी अद्वितीय क्षमताओं को आर्जित कर सका है। मानव शिशु अपने विकास के हर चरण में इन्हीं विशेषताओं को एक के बाद एक करके आर्जित करता जाता है। युवाल नोआ हरारी मानते हैं कि मानव प्रजाति जब से व्यावहारिक जीवन में वास्तविक स्थितियों के संदर्भ में काल्पनिक परिकल्पनाओं को लागू करने लगी तब से संज्ञात्मक क्रान्ति की शुरुआत हुई। वास्तविक स्थितियों को कल्पना में बदलने की यही प्रणाली मिथकों को रूपायित करती है, यही मिथक अपने विशाल परिदृश्य में मानवीय सामाजिक संबन्धों को निर्धारित करते हैं। युवाल नोआ हरारी कहते है "Fiction has enabled us not merely to imagine things, but to do so collectively - We can weave common myths such as the biblical creation story, the Dreamtime myth of aboriginal Australians, and the nationalist myth of modern states - Such myth give Sapience the unprecedented ability to cooperate flexibly in large numbers." मतलब सामाजिक जीवन की संकल्पनात्मक अवधारण मात्र कोरी कल्पना नहीं है। मानव संस्कृति को रूपायित करने वाले हर मिथक मानव की इसी कल्पना शक्ति के बलबूते पर निर्मित हुए है। मनुष्य की यह संकल्पनात्मक शक्ति सामाजिक जीवन के यथार्थ को दो स्तरों में बाँट देती है जो अंग्रेजी में सब्जक्ट रियालिटि और ऑब्जक्ट रियालिटि के नाम से जाना जाते हैं जिसे हम हिन्दी में संकल्पनात्मक यथार्थ तथा वस्तु स्थिति यथार्थ कह सकते हैं।

संकल्पनात्मक यथार्थ का अस्तित्व मानव मन तक ही सीमित है। मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के बाहर संकल्पनात्मक यथार्थ का कोई अस्तित्व नहीं रहता। उदाहरण के तौर पर पैसे की संकल्पनात्मक यथार्थ की स्थिति को लिया जा सकता है। मनुष्य के व्यावहारिक जीवन के बाहर वस्तुस्थिति की नजर से पैसा कागज के टुकडे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसी संकल्पनात्मक यथार्थ के बलबूते पर ही विशाल मानवीय सामाजिक संबन्धों का रूपायन संभव हो सका है। संकल्पनात्मक यथार्थ के सहारे मानवीय सामाजिक संबन्ध अति विस्तृत हो गया पर इसी के साथ मानवीय सामाजिक संबन्धों का बुनियादी स्वरूप मिथकों के बदलने के अनुरूप बदलने के लिए विवश भी हो गया। समकालीन मानवीय संबन्धों के बदलाव की स्थिति को संकल्पनात्मक यथार्थ की इस अवधारणा के तहत पहचानना समकालीन सामाजिक संबन्धों को समझने का एक नया पाठ

तैयार करता है।

मानवीय सामाजिक संबन्धों का बुनियादी मिथकीय स्वरूप व्यावहारिक बुद्धि यानि कॉमन सेन्स के रूप में काम करता है। जो बदलाव की स्थिति को युगानुरूप स्थगित रखने की कोशिश करता नजर आता है। पियरे बोर्दिओ अपने ऑउटलेइन ऑफ ए थियोरि ऑफ प्राक्टीस (Outline of a theory of practice) नामक पुस्तक में व्यावहारिक बुद्धि की इस प्रणाली को डोक्सा (Doxa) के नाम से अभिहित करते है। जिन्दगी के बहुत सारे पहलुओं को हम प्राय: बिना किसी सवाल के स्वीकार करते हैं- बिना किसी व्याख्या और सवाल के हम बहुत सारी जीवन स्थितियों को आत्मसात करते भी जाते हैं। जिन्दगी के इन पहलुओं की दूसरी प्रकार होने की संभावनाओं के बारे में हम सोचते तक नही हैं। हमारी जिन्दगी के ऐसे पहलू जो सवालों से परे रहकर बिल्कुल स्वाभाविक लगे उसी को बोर्दिओ डोक्सा कहते हैं। यही डोक्सा सामाजिक जीवन को सत्ता के अनुकूल नियंत्रित रखने में भारी मात्रा में सहायता पहुँचाता हैं। आधुनिकता ने सर्व प्रथम डोक्सा की स्थगित परंपरावादी दृष्टि के सामने प्रश्न चिह्न खड़ा किया । मनुष्य के उद्विकास क्रम में सामाजिक संबन्ध बनाये रखने के लिए संकल्पनात्मक यथार्थ पर समाज का स्थायी विश्वास बहुत ही अनिवार्य था। पर आधुनिकता के साथ व्यक्ति का समाज के साथ संबन्ध बिलकुल नये सिरे से परिभाषित होने लगा। संकल्पनात्मक यथार्थ लगातार तार्किक होता गया। संकल्पनात्मक यथार्थ का लगातार तार्किक होना मानवीय सामाजिक संबन्धों की ऊष्मा वा संवेदना को भी लगातार कम करता गया। समकालीनता और आधुनिकता के बीच के अंतर को संकल्पनात्मक यथार्थ की विभिन्न समाज संपृक्त स्थिति के तहत सही मायने में पहचाना जा सकता है। समकालीन मलयालम और हिन्दी कविता बदल रहे सामाजिक संबन्धों के संकल्पनात्मक यथार्थ को समाज संपृक्त स्थिति के विभिन्न संदर्भों में सही मायने में अभिव्यक्ति दे रही है। समकालीन कविता जहाँ एक तरफ सत्ता द्वारा प्रायोजित डोक्सा की स्थगित सामाजिक स्थिति का प्रतिरोध करती है वही दूसरी तरफ डोक्सा में अंतरनिहित सांस्कृतिक विरासत के चिह्नों को धूमिल होने भी नही देती। संरचना (Structure) और ऐजन्सी (Agency) का प्रतिलोम होने की स्थिति की पहचान ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। समकालीन कवि यह पहचानते हैं और शिद्धत से उसका प्रतिरोध भी करते हैं। स्वप्निल श्रीवास्तव कहते हैं

''ईश्वर के नाम होते थे दंगा
दंगों की राजनीति की जाती थी
राजनेताओं को बाँटी जाती थी
कुर्सियाँ।'' 4

ईश्वर के संकल्पनात्मक यथार्थ के आधार पर सांप्रदायिकता को जिलाये रखना राज नेताओं को सत्ता पाने केलिए अनिवार्य सा है। धर्म के इस संकल्पनात्मक यथार्थ की समाज संपृक्त स्थिति को सही मायने में पहचान कर उसका पोल खोलना एक कवि की समकालीनता को निर्धारित करता है। मलयालम के प्रसिद्ध कवि सच्चिदानंदन के वयलार पुरस्कार प्राप्त कविता संग्रह 'साक्ष्यपगंङल' की कविता 'मन्त्र' में कवि मानवीय महत्वाकांक्षा के चलते उभरनेवाली नृशंसता

को व्यंग्यात्मक ढंग से अभिव्यक्ति देते हैं। कविता का भाव इस प्रकार है ''दुबारा जिलाने के विश्वास के खातिर मैंने तुम्हें मारा था। पर मारने के बाद जिलाने का मंत्र मैं भूल गया। चाकू संभालकर मैं इंतजार में हूँ। कुछ और लोगों को मारने पर शायद जिलाने का मंत्र याद आ जाये?'' 5 लगातार किये हत्याकाण्डों को धर्म का लेबल लगाकर सुकृत्य में बदलने में ये लोग माहिर है और उसी के नाम पर सत्ता में छिपके रहने वाले इन लोगों का पोल खोलकर समाज के सामने रखना कवि के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। दोनों कविताओं में समकालीन मानवीय सामाजिक संबन्धों का लगातार नृशंस होते जाने की भयावह स्थिति की इसी चुनौती को स्वीकारा गया है।

जहाँ संकल्पनात्मक यथार्थ डोक्सा के रूप में परंपरा पर आधारित तर्क विहीन व्यावहारिक बुद्धि के रूप में काम करता है वही पूंजी पर आधारित संकल्पनात्मक यथार्थ सामाजिक संबन्धों को तर्क पर आधारित माल वाही संस्कृति की संरचना के रूप में नियोजित करता है। दोनों ही स्थितियाँ समकालीन समय को बेहद जटिल बनाती हैं। समकालीन कवि सामाजिक संबन्धों की इस अंदरूनी परतों को बहुत सटीक रूप में पहचान रहे हैं। पूंजी के संकल्पनात्मक यथार्थ की अमानवीयता को दर्शाते हुए पंकज राग कहते हैं

''चकाचौंध कर खींचते हुए नए चुम्बक
रोशन कर के झुलसा देने की कला
हर तरीके के पले पाले कलाकार
बुद्धिजीवियों और तालीमयाफ्ता नुमाइंदों की बढ़ती कतार
रात को खींचकर निकाला जा रहा समय
दिनों को निचोड़कर बनाई जा रही जगह
जैसे रात के अन्तिम पहर में पूरी पार्किंग को चौंधियाति आती एक नई कार
जैसे भूमंडल में एक नए तारे का आविष्कार।''6

भूमंडल की प्रायोजित सामाजिक संरचना लगातार आँखों को चकाचौंध करती जा रही है। जहाँ हर चीज पण्य में बदलती जा रही है वहाँ मानवीयता का ठौर-ठिकाना कहाँ होगा? पूंजी के संकल्पनात्मक यथार्थ के सामने मात्र मुनाफा ही स्थाई है। समकालीन सामाजिक जीवन के हर स्तर पर मानवता के छद्म वेष धारण कर पूंजी उपस्थित हो रही है। सतही दृष्टि पूंजी के इस छद्म को तोड़ नहीं पाती वही क्रान्त दर्शी कवि पूंजी के चरित्र का पोल खोलते हैं। मलयालम के प्रसिद्ध कवि पि .पि रामचंद्रन की कविता माबषण्कालम (आम का मौसम) में मालवाही संस्कृति के चलते यन्त्रवत हेते जाते मानवीय संबन्धों को बहुत गहराई में संवेदित कराती है। बेटी के सवाल कि ''गाँव के सभी आम का स्वाद माँगो फूटी जैसा है क्या?'' 7 से शुरू होने वाली कविता बाहर फेंकी जा रही खाली पैकेट की तरह खोखले हो रहे मानवीय संबन्धों की एहसास दिलाकर खतम होती है। आज हम खरीदने पीने और फेंकने की संस्कृति के आदी हो चुके हैं। पुराने जमाने में अंतिम रस भी चक कर फेंके जाने वाली आम की गुठलियां अंकुरित होकर फूलने फलने की जीवन की अनस्यूतता अपने में संचित रखती थी पर आज हम कल के लिए जीवन के मधु कण को बचाये रखने की सांस्कृतिक विरासत से लगातार दूर होते जा रहे हैं ।

समकालीन समय की माल वाही संस्कृति के चलते संकल्पनात्मक यथार्थ की तार्किक स्थिति मानव के हृदय से मानवता को बेदखल करती जा रही है। परंपरा के कुछ पहलुओं को जीवन से खारिज करना मनुष्य को यन्त्रवत बना देगा। मनुष्य के उद्विकास क्रम में संकल्पनत्मक यथार्थ की कुछ ऐसी स्थितियाँ रूपायित हुई थीं जो तर्क से परे रहकर मानवीय संबन्धों को ऊष्मा देकर जिलाये रखती थीं। समकालीन समय में मानवीय संबन्धों की यह स्थिति भारी उलट फेर का शिकार हुआ है। जहाँ एक तरफ ये कवि मानवता के खातिर आम की गुठलियों को बचाये रखने की जरूरत को जताते है वही दूसरी तरफ परंपरा के नाम पर रची जा रही आम की गुठली रूपी छद्म मॉडलो को आक्रामक ढंग से तोड़ने पर मजबूर भी होते जा रहे हैं। पंकज राग कहते हैं

''हमारा अतीत तो वह हो नहीं सकता
क्योंकि इतिहास पर पैबंद हमने बड़े करीने से लगा रखा है
वर्तमान के दुस्साहस की भी अखबारों में कोई खबर नही हैं
और अखबारों की संस्कृति में न सिर्फ उनके मालिकों की पूंजी
बल्कि हमारी स्वाधीनता के सभी शोरूम भी जुड़े हैं
भविष्य में भी हमें सिकुड़कर ही और चमकदार होना है
क्योंकि बडे साधु संतों ने हमारे सिमटने को
अहम को मांज चमकीला बनाना परिभाषित भी कर दिया है।'' 8

यहाँ पंकज राग समकालीन सामाजिक जीवन की जटिलता को बहुत स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति देते हैं। समकालीन सामाजिक संबन्धों के संकल्पनात्मक यथार्थ की तार्किक स्थिति जहाँ इतिहास के महत्वपूर्ण पहलुओं को लगातार खारिज करती है वही आधुनिकता की वैयक्तिक स्वायत्तता को भी पनपने नहीं देती। समाज की एजेन्सी को डोक्सा जहाँ सत्ता के अनुकूल नियंत्रित करता है वहाँ पूँजिवादी व्यवस्था भी सत्ता को पूंजी के अनुकूल व्यवस्थित कर समकालीन भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था को जन विरोधी स्वरूप देती है। माल वाही संस्कृति के बृहतर षडयंत्र की वजह से अपने सामने परोसे जा रहे चमकदार वजूदों के मॉडलों को कवि सटीक रूप से पहचान रहे हैं।

''शिष्टाचार भी एक बहाना ही है
बहाने न होते तो बातें साफ-साफ होतीं
यह कहा जा सकता है कि आप सब मिलकर और कुछ अलग अलग
झूठ ही बोल रहे हैं
और जो छप रहा है या दिखाया जा रहा है वह भी एक छद्म ही है
या कठपुतलियों का नृत्य।
यह भी कहा जा सकता है कि जिसकी जडें आप निकाल कर फैलाना चाहते हैं
और जिसे आप संस्कृति की अस्मिता कहते हैं
उससे एक दुर्गंध आती है।''9

सांस्कृतिक वजूद के लगातार बासी होते जाने की समकालीन संकट की स्थिति को समकालीन कवि पहचान रहे हैं। छद्म वजूदों के मॉडलों के सामने अपने खोये हुए स्वत्व को वे लगातार ढूंढ रहे हैं। अरुण कमल कहते हैं

''इस नए बसते इलाके में
जहाँ रोज बन रहे हैं नये-नये मकान
मैं अक्सर रास्ता भूल जाता हूँ
धोखा दे जाते है पुराने निशान
खोजता हूँ ताकता पीपल का पेड़
खोजता हूँ ढहा हुआ घर
और जमीन का खाली टुकड़ा जहाँ से बाएँ
मुड़ना था मुझे''10

संक्षेप में कहा जा सकता है कि समकालीन मलयालम और हिन्दी कवि समकालीकता की हर विद्रूपताओं को बहुत ही सजग दृष्टि से पहचान रहे हैं। समकालीन सामाजिक जीवन की दोहरी स्थितियों को सटीक रूप से पहचान कर वे लोगों को आगाह कर रहे हैं। ये कवि सामाजिक जीवन के बदलते संदर्भों की अंदरूनी परतों की जिरह कर उससे लगातार बेदखल हो रही मानवीयता को बचाकर रखने के प्रयत्न में शिद्धत से जुड़े हुए हैं ।

संदर्भ :

1 डॉ. वत्सलन वातुशेरी मलयालासाहित्यानिरूपणम अटरुकलय अटयालंग्ल Page 183
2 राजेश जोशी समकालीनता और साहित्य Page 120
3 NOAH HARARI YUVAL SAPIENS A BRIEF HISTORY OF HUMANKIND Page 25
4 स्वप्निल श्रीवास्तव बेघर-ईश्वर, मुझे दूसरी पृथ्वी चाहिए पृ.सं 117 5 डॉ एम षण्मुखन कालत्तिन्टे साक्ष्यंग्ल Page no 168
6 पंकज राग -यह भूमंडल की रात है पृ सं 10
7 डॉ एम षण्मुखन कालत्तिन्टे साक्ष्यंग्ल Page no 212
8 पंकज राग-यह भूमंडल की रात है पृ सं 70
9 पंकज राग-यह भूमंडल की रात है पृ सं 57
10 अरुण कमल-नये इलाके में पृ सं 13

महेष एस, शोधार्थी, कोच्चिन विश्वविद्यालय, कोच्ची – 22

अंधायुग : समकालीन विद्रूप राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

डॉ. अनिल कुमार सिंह

समकालीन विद्रूप राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वैषम्य पूर्ण आर्थिक ढाँचा, सामाजिक अन्याय और उन सबके बीच अपनी ही रूढ़ियों, कमजोरियों से घिरा मनुष्य और उसी को व्यंजित करता हुआ अंधायुग राष्ट्रीय सीमा का अतिक्रमण करता हुआ पूरे वैश्विक परिदृश्य को रेखांकित करता है। उनकी यह कृति जनसंघर्ष की कविता है जो युग परिवेश और समकालीनता के द्वन्द्व, तनाव एवं संघर्ष को भोगा है इसलिए उनका सृजन सर्वथा मुक्त और मूल्य वैश्विक है। जन संघर्ष की कविता का सौन्दर्यशास्त्र ही उसका संवेदनशास्त्र है।

सन् 1954 ई0 में, लिखी गयी डॉ0 धर्मवीर भारती की यह नाट्यकृति हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट महत्व एवं अस्तित्व रखती है। अपने परिवेश, अपनी रचना-प्रक्रिया, प्रेरणा स्रोत एवं उसकी मानसिकता तथा उसमें निहित दर्शन, समाज, संस्कृति, नीति एवं सर्वकालिक वैचारिकता के कारण अंधायुग एक कालजयी कृति के रूप में प्रतिष्ठित है। संसार ने प्रथम तथा द्वितीय विश्व युद्ध देखा। द्वितीय विश्वयुद्ध में छोटा सा परमाणु बम ने जो व्यापक नरसंहार किया, उससे दुनिया काँप गई, मानव अस्तित्व पर एक गहरा प्रश्न-चिन्ह खड़ा हो गया। अंधायुग प्राचीन कथा सूत्रों के सहारे मानव सभ्यता के सामने खड़े आसन्य संकट पर एक चिंतन प्रक्रिया है। प्रत्येक राष्ट्र एवं व्यक्ति का प्रयत्न स्वार्थ केन्द्रित है और सारा प्रयास उसी के अनुरूप है। प्रकृति मनुष्य के रक्षण में लगी है क्योंकि मानव उसे बहुत प्रिय है। वह अपना सारा स्नेह उसी पर उड़ेल देती है लेकिन स्वार्थ से वशीभूत मनुष्य उसकी ओर बढ़ता जा रहा है। अंधायुग का प्रारम्भिक कथन इसी ओर संकेत कर रहा है-

मैं कृष्ण प्रेम वश
अब तक इनकी रक्षा करता था
मैं विजय दिलाता
इनमें नया पराक्रम भरता था
पर अब अधर्म-बध
द्वार उन्होंने स्वतः मृत्यु के खोले।।[1]

स्पष्ट है कि मनुष्य ने जो विकास किया है और जो प्रकृति पर विजय प्राप्त की है,

उसको प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करने वाली स्वयं प्रकृति ही थी मोह ग्रस्त मनुष्य इसे अपने वृद्धि एवं बल का पराक्रम समझता जा रहा है और प्रकृति को सहयोगी तथा मित्र मानने के बजाय उसे अपना विरोधी मान लिया है और उसे मिटाने पर तुल गया है, और उसकी ओर बढ़ने वाला प्रत्येक कदम मृत्यु की ओर बढ़ता हुआ कदम है।

समकालीन विद्रूप राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति वैषम्य पूर्ण आर्थिक ढाँचा, सामाजिक अन्याय और उन सबके बीच अपनी ही रूढ़ियों, कमजोरियों से घिरा मनुष्य और उसी को व्यंजित करता हुआ अंधायुग राष्ट्रीय सीमा का अतिक्रमण करता हुआ पूरे वैश्विक परिदृश्य को रेखांकित करता है। उनकी यह कृति जनसंघर्ष की कविता है जो युग परिवेश और समकालीनता के द्वन्द्व, तनाव एवं संघर्ष को भोगा है इसलिए उनका सृजन सर्वथा मुक्त और मूल्य वैश्विक है। जन संघर्ष की कविता का सौन्दर्यशास्त्र ही उसका संवेदनशास्त्र है। गहरी संवेदजनित निष्ठा, सजगता, ईमानदारी एवं प्रतिबद्धता से युक्त धर्मवीर भारती जीवन भर जूझते रहे। समाज की पेचदगी जटिलता, सघन संवेदनीयता एवं आत्मसंघर्ष का ही रूपान्तरण है, यह व्यक्तित्वान्तरण की प्रक्रिया है जो विराट होता हुआ महाकाव्य पीड़ा का आकार लेकर सम्पूर्ण मानव-जाति को आप्लावित कर देता है। अंधायुग के आरम्भ में धर्मवीर भारती कहते हैं कि ''एक स्थल पर आकर मन का डर छूट गया था। कुंठा, निराशा, रक्तपात, प्रतिशोध, विकृति, कुरूपता, अन्धापन-इनसे हिचकिचाना क्या, इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ रत्न छिपे हुए हैं तो क्यों न इनमें निडर धाँसू। इनमें धाँसकर भी मैं मर नहीं सकता। ''हम न मरै मरिहै संसारा'' पर नहीं संसार भी क्यों मरे? मैंने जब वेदना सबकी भोगी है तो जो सत्य पाया है, वह अकेला मेरा कैसे मिट जाता है। वे भिन्न नहीं रहते।

डॉ० धर्मवीर भारती इस बात पर दृढ़ है कि मानव सभ्यता पर संकट का कारण व्यक्ति ही है, उसकी नीतियाँ ही मानव सभ्यता को एक दिन नष्ट कर देंगी जो भी आज विधवंस दिखाई दे रहा है उसके लिए उसकी कुटिल नीतियाँ ही जिम्मेदार है। अश्वत्थामा स्वयं को पशु बनने के लिए इन्हें ही जिम्मेदार मानता है। उसका मानना है कि युधिष्ठिर का अर्ध सत्य और कृष्ण के अन्यायपूर्ण कार्यों ने उसकी मनोवृत्ति को पशु-मनोवृत्ति में परिवर्तित कर दिया है। उसके अवचेतन में युद्ध की विभीषिका के कारण प्रतिशोधात्मक वृत्ति तीव्र हो उठती है, जहाँ उसे प्रत्येक क्षण उठते-बैठते घात-प्रतिघात ही दिखाई दे रहा है, नियम और मर्यादाएँ सब खंडित हो गयी है आज का मनुष्य किस तरह अनास्था, कुंठा, अविश्वास, विघटन आदि में पल रहा है, इसका यहाँ संकेत मिलता है, व्यक्ति और राष्ट्र अपने हित की पूर्ति के लिए निरन्तर मर्यादाओं को तोड़ते चले जा रहे हैं और फिर इसी समाज में से एक दिन अश्वत्थामा सरीखा वर्ग पनपेगा और उस दिन इस दृष्टि की मानव सभ्यता समाप्त हो जाएगी क्योंकि महाभारत का युद्ध समाज मैं निरन्तर जारी है-

युद्धोपरान्त यह अंधायुग अवतरित हुआ
जिसमें स्थितियाँ, मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत है।'[2]

आज मनुष्य की वैज्ञानिक प्रगति इतनी अधिक बढ़ती जा रही है कि वह प्रकृति को लगतार नियंत्रित करता जा रहा है और अब उसे बदलने का उपाय भी करने लगा है-

नियति नहीं है पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव निर्णय बनाता मिटाता है।'[3]

और उसकी बौद्धिकता इतनी प्रबल होती जा रही है कि उसने भाग्य और नियति को अपने नियंत्रण में ले लिया है और उसे अपने अनुसार शासित भी करने लगा है-

पर मैं तो हूँ निष्क्रिय निरपेक्ष
सत्य
मार नहीं पाता हूँ
कर्म से पृथक
खोता ही जाता हूँ क्रमशः
अर्थ अपने अस्तित्व का।''[4]

अंधायुग में जिस अविश्वास, निराशा और विध्वंस की कल्पना महाभारत में की गयी है, वे द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद की भी स्थितियाँ रही है। अंधायुग की तरह मनुष्य की सभ्यता को दाँव पर लगाये आज के समाज में युद्ध एक व्यवसाय बन गया है। यह व्यवसाय धनी देशों की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देता है, इस कारण मानव सभ्यता हमेशा दाँव पर लगी रहती है। सब कुछ दाँव पर लगाकर हथियार इकट्ठा किए जा रहे हैं। घास खाने का संकल्प है, सभ्यता के विनाश कारक हथियारों को इकट्ठा करने के लिए। गरीब एवं पिछड़े देश युद्ध के उन्माद एवं अहं में अपने को गिरवी रखकर इसे इकट्ठा करने की कोशिश में लगे हुए हैं। जमीन का उपजाऊपन, जंगलों एवं वनस्पतियों का विनाश, नदियों का लगातार सूखते जाना, क्षण प्रतिक्षण सभ्यता पर गहराते आसन्न संकट को ही संकेतित करता है।

हवा और पानी प्राणी मात्र के लिए प्रकृति की दो अमूल देन है। इसी पर सम्पूर्ण प्राणियों का जीवन निर्भर है लेकिन ऐसी विषम परिस्थितियों में परिणाम स्वरूप इन दोनों के नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो गया है, जो प्रकारान्तर से हमारी मानव सभ्यता पर खतरा है। हम अहं में तथा शक्ति के उन्माद में इस बढ़ रहे खतरे की गम्भीरता को पूरी तरह समझ रहा है अन्यथा सारा विश्व तो उन्माद से ग्रस्त है। कभी उसे विकास दिखाई दे रहा है तो कभी उसे बढ़ता हुआ प्रभाव-विस्तार दिखाई दे रहा है। प्रकृति और उसके तत्वों को लोग हल्के में लेते हैं, हवा और जल की ओर हमारा ध्यान ही नहीं जाता क्योंकि वह हमें सहज रूप में प्राप्त है। हवा को तो हम महसूस करने के हद से अधिक भुला बैठे हैं। आज हम सामान्य जीवमण्डल में नहीं अपितु तकनीकी मण्डल (टेक्नोस्फीयर) में रह रही हैं। इस तकनीकी मण्डल की ऑक्सीजन की आवश्यकताएँ दुनिया के सब जीवधारियों को ऑक्सीजन की आवश्यकता से पन्द्रह गुणा अधिक हैं। अब विषाक्त हवाओं का प्रभाव मनुष्यों के अलावा वनस्पतियों पर भी पड़ने लगा है। महानगरों में हवा का स्तर इतना कम तथा प्रदूषण का स्तर इतना अधिाक होता जा रहा है कि मनुष्य का जीवन कठिन होता जा रहा है, यह संकट मनुष्य की नीतियों के कारण निरन्तर गहराता जा रहा है। विषाक्त हवाओं से मुक्ति को कोई रास्ता उनको दिखाई नहीं देता है। ऐसे में यदि परमाणु युद्ध हुआ तो पृथ्वी की क्या स्थिति होगी। आज यह अकल्पनीय नहीं रह गया है इसका संकेत हमें अंधायुग में व्यास के कथन में दिखाई देता है-

ज्ञात क्या तुम्हें है परिणाम इस ब्रह्मस्त्र का।
यदि यह लक्ष्य सिद्ध हुआ ओ नर पशु
तो आगे आने वाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पति नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुंठाग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी
जो कुछ भी ज्ञान संचित किया है मनुष्य ने
सतयुग में त्रेता में, द्वापर में
सदा-सदा के लिए होगा विलीन वह
गेहूँ की बालों में सर्प फुफकारेंगें
नदियों में बहबह कर आयेगी पिघली आग।[5]

आज अधिकांश देश परमाणु बम से युक्त हो गए है उसके प्रयोग के प्रति बढ़ती उनकी अश्वथामा की तरह से अधीरता, सभ्यता एवं संस्कृति को डॉ वाडोल किए हुए है। उसके अस्तित्व के संकट को गहन से गहनतर ही करता जा रहा है, राष्ट्र चाहे जो होगा इससे बचने का कोई उपाय नहीं है। मानव सभ्यता पर आने वाले इस संकट की परिकल्पना कवि धर्मवीर भारती ने की है। उन्होंने नागासागी, हिरोशिमा के बाद उस आसन्न संकट को गहरे स्तर तक महसूस किया है। वे मानते हैं कि सृष्टि के प्रति, मानव के प्रति लोगों की जड़ होती हुई संवेदना कब फट पड़े, सभ्यताएँ कब विलुप्त हो जाय, संस्कृतियाँ कब तिरोहित हो जाय, मानो इसी इंतजार में मनुष्य बैठा हुआ है। वे इसकी कल्पना अंधायुग मे करते हुए कहते हैं कि-

लेकिन नराधम
ये दोनों ब्रह्मस्त्र अभी नभ में टकरायेंगे,
सूरज बुझ जायेगा
धरा बंजर हो जायेगी।[6]

नैतिकता एवं सच तार-तार हो रहा है इन पंक्तियों के माध्यम से स्पष्ट हो रहा है-

तोड़ी हुई मर्यादा
कुचले हुए अजगर सी
गुजलिका से कौरव वंश का लपेटकर
सूखी लकड़ी सा तोड़ डालेगी।[7]

मनुष्य अधिकता एवं स्वार्थ की पूर्ति तो चाहता है लेकिन वे अपने कर्तव्य से भागते हैं-

विदुर तुम
मैं था जन्मान्ध
कैसे कर सकता था
ग्रहण मैं
बाहरी यथार्थ या सामाजिक मर्यादा को ?[8]

मनुष्य अपने मूल्य खो चुका है और ऐसे मूल्यों एवं परम्पराओं की रक्षा में हम लगे हुए हैं। जो किसी भी तरह से समाज की रक्षा में उपयोगी नहीं है-

कुछ भी अर्थ नहीं था
जीवन के अर्थहीन
सूने गालियारे में
पहरा दे-देकर
अब चुके हुए हैं हम।[9]

और परिणामत: ऐसे वातावरण का सृजन करता है जहाँ वह अपने स्वार्थ को जायज ठहरा सके-

स्वत: अपने अन्धेपन से उपजा था
मैंने अपने ही वैयक्तिक सम्वेदन से जाना था
केवल उतना था मेरे लिए वस्तु जगत्।''[10]

वस्तुत: आज मानव जाति राह से भटक गई है, जो बड़े है, जिन पर विश्व की रक्षा का भार है, वहीं शोषण में लग गए हैं, आज विश्व के अधिकांश सम्पन्न एवं सभ्य देश अपने से छोटे देशों का शोषण कर रहे हैं और अपने-अपने हित के अनुसार नियमों की व्याख्या हो रही है, ऐसी स्थिति रही तो मानव सभ्यता को नष्ट होने में ज्यादा समय नहीं। अंधायुग के माध्यम से धर्मवीर भारती दुनिया के अस्तित्व के लिए प्रश्न चिन्ह बनकर खड़ी प्रदूषण एवं संहारक युद्ध अस्त्रों की ओर संकेत करते हैं और कहते हैं कि देशों के बीच यदि हम जिम्मेदारी स्थिति बनी रही तो खतरा बहुत दूर नहीं क्योंकि कामनाएँ ही मृत्यु का कारण बन जाती हैं। जंगल शहर में परिवर्तित हो रहे हैं। जल स्रोत नदियाँ, झीलें, पोखर, तालाब, समाप्त हो रहे हैं, विभिन्न जीव-जन्तुओं पक्षियों की प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही हैं ऐसे में मानव के सुरक्षित जीवन की कल्पना संभव नहीं। दुर्भाग्य से इसका कारण मनुष्य खुद बन रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अंधायुग-धर्मवीर भारती-प्रस्तुत संस्करण-1984, किताब महल एजेन्सी 84 के0पी0 कक्कड़ रोड, इलाहाबाद, पृष्ठ सं0-80, 2. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-12, किताब महल, इलाहाबाद।, 3. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-26, किताब महल, इलाहाबाद।, 4. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-126, किताब महल, इलाहाबाद।, 5. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-95, किताब महल, इलाहाबाद।, 6. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-95, किताब महल, इलाहाबाद।, 7. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-19, किताब महल, इलाहाबाद।, 8. अंधायुग-धर्मवीर भारती - पृष्ठ सं0-19, किताब महल, इलाहाबाद।, 9. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-15, किताब महल, इलाहाबाद। 10. अंधायुग-धर्मवीर भारती-पृष्ठ सं0-15, किताब महल, इलाहाबाद।

डा0 अनिल कुमार सिंह, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद डिग्री कालेज, इलाहाबाद
मो0 नं0 – 94584219856

लोकटाक कब तक!

डॉ. रीतामणि वैश्य

जेरू नीचे देखती है। असम पहुँच गयी होगी वह। चारों तरु पहाड़ी है और पहाड़ियों से उतरकर कई झरने एक बड़ी-सी नदी में आ मिले हैं। उसे महसूस होता है इन झरनों और नदियों की तरह है भारत के उत्तर पूर्व का यह क्षेत्र। विविध जातियों, संप्रदायों की विविधता से भरे होते हुए भी सब एक हैं। जेरू दया की ओर देखती है....यह वही लड़का है जो कभी उंगली पकड़कर उसे स्कूल ले जाता था और अब उसके जीवन का साथी बनने बेताब है। केबिन क्रू के कहने से वह सीट की पेटी कस लेती है। जेरू को नीचे लोकटाक नजर आती है।

हवाई जहाज की ऊंची उड़ान के साथ-साथ दयासागर के मन की उमंगें भी ऊंची उठने लगीं। दिल्ली से इम्फाल की उड़ान भरनेवाले हवाई जहाज की खिड़कीवाली सीट पर जेरू बैठी है। उसकी बगलवाली सीट से जेरू की आँखों में आँखें डाल वह कहता है-'जेरू, मैं तुम्हें जिंदगी में कभी रोने नहीं दूंगा। इस तरह से तुम्हारा ख्याल रखूंगा कि तुम्हें अफसोस होगा कि अबतक तुम मेरे साथ क्यों नहीं भागी' कहता हुआ दया ने जेरू का हाथ प्यार से सहलाया। फिर उसे कुछ देर तक दबाते हुए उसे एहसास दिलाने की कोशिश की कि मैं हूँ तुम्हारे साथ। जेरू ने उसके कंधे पर अपना सर रख दिया। जेरू का सर थपथपाता हुआ वह बोला-'मेरा संबंध तुम्हारी आत्मा से है। तुमने मुझ पर पूरा कब्जा कर लिया है, मेरी इजाजत के बगैर। और तुम्हारी यह बेदखली मुझे जीना सिखाती है।' दया की बातों को जेरू दिल से सुनती है। हवाई जहाज की रफ्तार के साथ जेरू के दिल की धड़कन भी तेज हो जाती है।

दया और जेरू के घर आस-पास हैं, वे बचपन से एक दूसरे को जानते हैं। दोनों एक ही स्कूल में पढ़ते थे। दया जेरू से तीन साल बड़ा था। वह पढ़ने में बहुत तेज था। इंटर के बाद आगे की पढ़ाई के लिए वह दिल्ली चला गया। तीन साल बाद जेरू भी वहाँ पढ़ने पहुँची। अब दोनों साथ आया-जाया करते हैं। बचपन का आकर्षण एक नयी अनुभूति के साथ नए संबंध की तलाश करने लगा। इस बार दया आइ.एस. की परीक्षा पास हुआ है। उसने जेरू

से भाग जाने की अपनी मनसा जाहीर की। जेरू के पापा भी उसे शादी के लिए कह रहे थे। जेरू ने भी तय किया था बी.ए. की परीक्षा के बाद वह दया के साथ भाग जायेगी।

मणिपुर में नारी का स्थान बहुत ऊंचा है। वह पुरुष के समान, बल्कि उससे आगे रहती है। ईमा मार्केट मणिपुरी महिलाओं के अधिकार और स्वतंत्रता का साक्षी है। इस बाजार का पूरा नियंत्रण औरतों के हाथों में होता है। यहाँ की लड़कियों को शादी के लिए मजबूर नहीं होना पड़ता। अपनी पसंद के लड़के को जीवन साथी के रूप में चुनने का उसे पूरा अधिकार होता है। यहाँ कुछ संप्रदायों में सगोत्रीय विवाह अशुभ माना जाता है। पर लोकविश्वास है कि ऐसी स्थिति में अगर लड़का और लड़की घर से भाग जाते हैं, तो अशुभ कट जाता है। फिर शादी के रीति-रिवाज पूरे किये जाते हैं। जेरू और दया भी एक ही गोत्र से होने के कारण उनकी शादी में बाधा थी। यह बाधा दूर करने के लिए उन्हें घर से भागना होगा।

जेरू नीचे देखती है। असम पहुँच गयी होगी वह। चारों तरफ पहाड़ी है और पहाड़ियों से उतरकर कई झरने एक बड़ी-सी नदी में आ मिले हैं। उसे महसूस होता है इन झरनों और नदियों की तरह है भारत के उत्तर पूर्व का यह क्षेत्र। विविध जातियों, संप्रदायों की विविधता से भरे होते हुए भी सब एक हैं। जेरू दया की ओर देखती है....यह वही लड़का है जो कभी उंगली पकड़कर उसे स्कूल ले जाता था और अब उसके जीवन का साथी बनने बेताब है। केबिन क्रू के कहने से वह सीट की पेटी कस लेती है। जेरू को नीचे लोकटाक नजर आती है। इम्फाल से कुछ दूरी पर अजीबोगरीब यह झील है लोकटाक, जो दुनिया की इकलौती तैरती झील है। भारत के उत्तर-पूर्व के सबसे बड़े साफ पानी की झील के रूप में प्रख्यात इस झील में कई जगह मिट्टी, पेड़-पौधों और जैविक पदार्थों से बने भूखंड,जिसे ुमदी कहा जाता है, उनके टुकड़े तैरते हुए दिखाई देते हैं। यहाँ का 'केइबुल लामजाओ राष्ट्रीय उद्यान' दुनिया का एकमात्र तैरता हुआ राष्ट्रीय उद्यान है। यह झील मणिपुर के लिये बहुत आर्थिक व सांस्कृतिक महत्व रखती है। लोकटाक मणिपुर की आयुरेखा है। इसके जलीय घास के हिस्से इतने बड़े होते हैं कि मछुआरे पुरखों से उसमें अपनी झोपड़ी बना कर रहते आये हैं और यही से वे मछली का शिकार करते हैं। उनमें उनका सारा संसार सिमट जाता है। इसके पानी में तैरती हुई इन झोपड़ियों से जेरू की नजर हटना नहीं चाहती।

कुछ समय बाद जोरों की आवाज करती हुई हवाई जहाज मणिपुर की धरती पर उतरता है। दया जेरू को घर छोड़ गया। जेरू की माँ आँगन में मछली खरीद रही थी। यह मछुआरा उसके बचपन से ही उन्हें मछलियाँ देता आया है। माँ और बेटी एक दूसरे के गले से लिपट गयीं। मछुआरे ने जेरू से कहा-'बिटिया, तेरी किस्मत से आज अच्छी मछली मिली है।'

'इसमें किस्मत की क्या बात है काका? जबतक लोकटाक है और तुम हो मछली जिंदाबाद।'

'यही तो बिटिया, हमारी झोपड़ियों को उठाने की बात हो रही है। हम तो सड़क पर आ जायेंगे।' पलड़े में मछली तौलता हुआ मछुआरा बोला। उसकी बातों से जेरू का मन उदास हो गया। वह अंदर चली।

हवा के झोंके लोकटाक की झोपड़ियों से लुकाछिपी खेलते हैं। झोंको के बहाव के साथ झोपड़ियाँ इधर-उधर चलती हैं। लोकटाक का जादू लोगों को अनायास अपनी ओर आकर्षित कर लाता है। जेरू और दया जब भी मणिपुर आते हैं, इसके किनारे पर कुछ समय जरूर काटते हैं। मणिपुर पहुँचने के एक दिन बाद ये दोनों घर से भागे थे, दो दिन होटल में गुजारने के बाद आज दोनों शाम को इसी लोकटाक के तट पर बैठे हैं।

जेरू लोकटाक की खूबसूरती में खो गयी। लोकटाक का पानी दूर-दूर तक फैलकर आकाश से जा मिला है। दूर तक निगाहें फैलाती हुई जेरू बोली- 'लोकटाक में बुझता हुआ सूरज कितना सुंदर दिखता है!'

'पर शरमाते हुए तुम्हारे चेहरे से यह सूरज भी होड़ न लेगा।' दया ने जेरू को शरारती नजर से देखा। वह लोकटाक की गहराई में डूबी हुयी थी। अत: दया ने जेरू की बातों में साथ दिया-'आर्तोकियों ने तो लोकटाक को नरक बनाकर रखा है।'

'हाँ, पता नहीं यहाँ सूरज कब उगेगा!'

'जब ये आतंकी सब मरेंगे, तब यहाँ हमारा सूरज उगेगा।'

'इतने लड़कों के हाथों में अब बंदूक उठ चुकी है, अगर सब मर जायेंगे, तो मणिपुर कहाँ जिंदा रहेगा?'

जेरू जब भी लोकटाक आती है, भावुक हो जाती है। इस झील के साथ यहाँ के लोगों की जिंदगियाँ और जिंदगियों की ढेर सारी कहानियाँ जुड़ी हुई हैं। जेरू जानती है कि आतंकवाद को खत्म करने के लिए झील की झोपड़ियों को हटाने की बात चल रही है। जीवन के इन मधुर क्षणों में भी उसे लोकटाक का दर्द सता रहा है। शाम हो गयी थी। यहाँ से होटल दूर था। दया ने वहाँ से जाना ठीक समझा।

जंगली रास्ते से होटल की ओर जा रही गाड़ी को पुलिस की वर्दी पहननेवाले एक लड़के ने रोकने का इशारा किया। ड्राइवर ने गाड़ी रोकी। दया ने अपना आइ कार्ड दिखाने के लिए बटुवा खोला ही था कि लड़के ने उसे गाड़ी से खींच कर बाहर किया। ड्राइवर को गाड़ी वापस लेने को कहा गया। जेरू चिल्ला रही थी। पर जंगल में किसकी चीख कौन सुनता है? और अगर कोई सुनता भी है कान बंद कर लेता है। मौत का डर किसे नहीं होता? जेरू को अगवा किया गया था।

जहाँ से जेरू अभी चली थी, उसे फिर वही लाया गया। यहाँ रात जल्दी होती है। लोकटाक पूरा सुनसान हो गया था। मछुआरों की झोपड़ियों से ढिबरी की हल्की-हल्की रोशनी आ रही थी। घाट पर एक नाव लगी थी। लड़के ने उसे खींचते हुए नाव पर चढ़ाया और नाव पानी में चलने लगी। कुछ दूर जाने के बाद एक झोपड़ी के पास नाव रुकती है। लड़का घसीटता हुआ जेरू को अंदर ले गया।

'तुम ने मुझे उठाया क्यों?' झल्लाती हुयी जेरू ने पूछा।

'तेरे बाप ने हमारे लीडर को पकड़ रखा है। उसे छुड़ाना है। और उसने हमारा बड़ा नुकसान किया। इसीलिए 1 करोड़ उसे देना होगा।'

'इन सबमें मुझे क्यों घसीटते हो? तुमलोग इस जन्नत को शमशान बनाने पर तुले हुए हो। सच है अपने का मारा जी नहीं पाता।'

'चिड़िया पकड़ने के लिए जाल बिछाना पड़ता है। और तू नहीं समझ पायेगी लड़की जन्नत किसे कहते हैं।'

'मैं खूब समझती हूँ तेरी जन्नत...लोगों को अगवा करो और फिरौती के लिए करोड़ों मांगो, उन्हें मारो, अपने लड़कों को आतंकी बनाओ, प्यार भरे दिलों में जहर भर दो, मौका मिलते ही जबान लड़की का मजा लूटो.....।'

जेरू के मुँह में पिस्तौल की नली घुसेड़ दी गयी थी। सहमी हुई वह जमीन पर बैठी रह गयी। कुछ देर बाद लड़के ने फिर पूछा –

'लड़की को लेकर हमारी क्या बात कर रही थी तू?'

'मुझे पापा ने बताया था... इसीलिए तो हम लड़कियों को यहाँ से दूर भेजा जाता है। और तेरे लीडर ने कबुल भी किया है।'

लड़का आँखें फाड़कर जेरू को देखने लगा। जेरू का बाप पुलिस का बड़ा अफसर है। आर्तकियों को काबू करने के लिए उन्हें खास जिम्मेदारी सौपी गयी है। जब से वे इस काम में लगे हैं, आर्तकियों का जीना हराम हो गया है। उनकी योजना से ही अनेक संगठन के लीडर जेल की सलाखों के पीछे सड़ रहे हैं।

रात गहरी होती जा रही थी और कमरे में वे दोनों अकेले थे। उनके साथ झोपड़ी के अंदर एक खाट, एक मोढ़ा, एक ओखल और एक चूल्हा इतनी ही चीजें थीं। शायद यह किसी अकेले मछुआरे की झोपड़ी होगी या यह भी हो सकता है कि ऐसे कामों के लिए ही यह झोपड़ी बनायी गयी है।

'यहाँ हम दोनों को ही रात काटनी होगी क्या?' डरी-सी आवाज में कुछ समय बाद जेरू ने पूछा।

'पुलिस की बेटी होकर डरती है?' उसने व्यंग्य भरी निगाह से जेरू को देखा। 'मैं तेरी पिस्तौल से नहीं, तुझसे डरती हूँ।'

'यह हमारे सिद्धान्त की जंग है। तेरा बाल भी बाँका नहीं होगा।'

'फिर भी डर लगता है, तो तू आतंकी ही...' 'शौक से कोई आतंकी नहीं बनता, हक की लड़ाई उसे आतंकी बनाता है। '

'गलत सोच से कोई आतंकी बनाता है। हक गोली से नहीं, बोली से मिलती है।'

'हमारी माएँ नंगी होकर गला फाड़ती हुयी बोल ही तो रही थी! कुछ फर्क पड़ा?'

आतंकी की आँखों से आग बरस रही थी। रात जेरू खाट पर शंकित भाव से पड़ी रही और आतंकी मोढ़े पर बैठ उसका पहरा देता रहा। उसने जेरू को समझा दिया था कि जब भी उसे

बाहर जाना हो वह दो-चार मिनट के लिए बाहर निकल जाएगा। जब आतंकी को बाहर जाना होगा, वह दरवाजे पर ताला लगाकर जायेगा। जेरू भागने की कोशिश न करे। उन दोनों पर संगठन की कढ़ी नजर बनी हुयी है। झील पर उनके जासूस घूम रहे हैं। उसकी चालाकी से उन्हें जान से हाथ धोना पड़ सकता है।

सुबह झोपड़ी के बाहर किसी की सिटी बजाने की आवाज आई। आतंकी ने झोपड़ी का दरवाजा खोला। एक नाव दरवाजे के सामने खड़ी थी। वहाँ से एक छोटे से लड़के ने एक टिफिन आगे बढ़ाया। आतंकी से कुछ कहकर लड़का वहाँ से चला। जेरू कुछ सुन-समझ न पायी। अंदर आकर उसने टिफिन खोला और साथ ही मसालेदार खाने की खुशबू ने झोपड़ी को अपने कब्जे में कर लिया। वह तल्लीन होकर खाना खाने लगा। कमरे में और किसी के होने की मानो उसे खबर ही नहीं थी। एकाएक उसकी नजर जेरू पर पड़ी। जेरू उसे खाना खाते देख रही रही थी। उसने अपने हिस्से में से कुछ खाना ढक्कन में रख जेरू के लिए खाट पर रख दिया। जेरू ने देखा मुर्गी का मांस, मछली, रोटी और अच्छे चावल के पुलाओ से टिफिन भरा है। उसे लगा ये अपने लोगों की जान की कीमत पर खरीदा हुआ खाना है। ये मांस अपने भाइयों के हैं। शाम तक उसने उसे हाथ नहीं लगाया तो आतंकी बोला-

'यह तेरे बाप का महल नहीं है, जो तेरे लिए कोई खाना लायेगा। खाना है तो खा, नहीं तो भूखी मर।'

'तुम्हारे हाथ चढ़ी हूँ तो क्या जीना क्या मरना! पता है मैं शादी के लिए भागी थी?'

'अच्छा! यह बताओ कि तुम शादी क्यों करना चाहती हो?'

'शादी उम्र की मांग है। माँ-बाप चाह रहे थे। वे मुझे खुश देखना चाहते हैं। और हर किसी को सुखी रहना चाहिए। मुझे भी।'

'सुखी रहने के लिए शादी करना जरूरी है क्या?'

'नहीं, सुखी रहने के लिए अपने लोगों को मौत के घाट उतारना जरूरी होता है।' जेरू ने कटाक्ष किया।

'हमारी खिल्ली मत उड़ा लड़की। हमारे साथ जो लूट हो रही है, उसे रोकना है।'

'लूट तो तुम लोग रहे हो अपने लोगों को। अपनी जमीन पर जीने के लिए भी तुम्हें पैसे देने होते हैं। हमारे यहाँ जितनी जातियाँ हैं, आतंकी गुट उससे ज्यादा हैं। किस-किस को खुश करते रहेंगे लोग?'

'लोग ठीक से काम नहीं करते, मनमानी करते हैं। उन्हें क्यों न लूटे?'

'जब अपनी तनख्वाह चार-छः गुटों में हर महीना बांटना होता है, तो काम करने की इच्छा किसकी रह जाएगी? लोग काम नहीं करते और तुम लोग ये सब करते हो?'

'हम करें क्या? सब बेरोजगार हैं।'

'आतंकवाद बेरोजगारी का हल नहीं हो सकता।

'अपनी धरती को मुक्त करने के लिए हम दर-दर भटक रहे हैं। पैसा हम इसीलिए लेते हैं।'

बंदूक के बलबूते पर कोई कुछ हासिल नहीं कर सकता। देखा नहीं गांधी जी ने अहिंसा के रास्ते ताकतवर अंग्रेजों को मात दी थी?'

'गांधी अब नहीं चलता, अब यह बंदूक चलती है। अरुणाचल, मेघालय, मणिपुर, असम, नागालैंड, मिजोरम, त्रिपुरा और जम्मू-कश्मीर के लोगों पर अफ्स्पा क्यों है? गांधी के नक्शेकदम पर चल कर 16 साल तक भूखी रहने के बाद इरोम को क्या मिला? हम भी इंसान हैं। एक ही देश में अलग-अलग कानून क्यों? क्यों हमारे लिए कहा गया-सुरक्षा बलों ! ये जंगली हैं। इन्हें देखते ही गोली मारो, बिना वारंट के गिरफ्तार करो।'

'भीम का गदा घूमाने के लिए शरीर में भीम की ताकत होनी जरूरी होता है। काबिल बन जा। असफर बन, आइ.एस. बन जायनहीं तो डॉक्टर, इंजीनियर, मास्टर, किसान कुछ भी काम ढंग से करना सीख जा। जाति को आगे खींचता ले चल। इरोम को हमने जो दिया, वही मिला। दुनिया उसे याद रखेगी। याद रख बंदूक से खिलवाड़ करनेवाला बंदूक की गोली से मारा जाता है।'

आतंकी असमंजस की स्थिति में मोढ़े पर बैठा है। उसके दिमाग में क्या चल रहा है जेरू समझ नहीं पायी। उसने अपना क्रम जारी रखा।

'संघर्ष आदमी को काबिल बनाता है। पैसा कमाने का यह आसान रास्ता दिल, दिमाग और शरीर से इस जाति को अपाहिज कर देगा। सीमापार से ये हथियार, ये नशीली चीजें हमें तबाह करने के लिए ही भेजे जाते हैं।'

'तुझे नहीं लगता कि हमारे साथ सौतेले बच्चे सा बर्ताव किया जाता है? यों भी हम गोद ही तो लिए गए हैं। एक लोकटाक के सिवा क्या है हमारे पास? यही हमारी प्यास बुझाती है, सिंचाई करती है, सैलानियों को बुलाती है और सबसे बड़ी बात हमें पनाह देती है। माँ है यह, इसीसे हम हैं। पर कबतक लोकटाक के सहारे हमें रहना होगा?'

'लोग बूंद-बूंद के लिए तरसते हैं और हमें सागर मिला हुआ है। तुमलोग लोकटाक से नाजायज फायदा उठाना छोड़ दो। लोगों को अगवा कर तुम यहाँ लाते हो, मुठभेड़ से बचने के लिए यही छिपते हो। तुम्हें काबू करने के लिए यहाँ की फुमदी निकालने की बात हो रही है। ये झोपड़ियाँ यहाँ से उठायी जानेवाली हैं। तैरती झोपड़ियों के बिना लोकटाक की क्या हालत होगी? मछुआरे भूखे मर जायेंगे। हमें किसी को न मारना है, न मरना है। सबको बस जीना है।'

'उनके लिए मणिपुर बहुत दूर है। नहीं तो दुनिया की इस अनोखे अजूबे को खत्म करने की बात क्यों होती?'

'इतना याद रख, अगर लोकटाक तैरती झील नहीं बनी रहेगी, तो इसका जिम्मेदार तुम सब होगे।'

आतंकी गंभीर मुद्रा में बैठ गया।कल से आतंकी और जेरू एक साथ हैं...एक ही कमरे में

दो अलग-अलग विचारों के इन दो मनुष्यों को एक दूसरे ने प्रभावित किया। एक-दूसरे की नजरिए से दोनों फिर से बातों को सोचने लगे। जेरू तन और मन से थक चुकी थी। रात उसे नींद जल्दी आ गयी थी। देर रात उसकी आँखें खुलीं। उसने ढिबरी की रोशनी में देखा कि आतंकी उसके पहरे में तैनात है। उसकी तर्जनी उंगली बंदूक के ट्रिगार पर सचेत है।

'तू अभी भी चौकन्ना है? भागूंगी तो मार डालेगा?'

'मैं तुझे मार नहीं पाऊँगा।'आतंकी धीमी आवाज में बोला।

'तो मैं भी तुझे मरने के लिए छोड़ भाग नहीं पाऊँगी।' कहकर जेरू करवट बदलकर फिर सो गयी।

सुबह जेरू ने देखा कि आतंकी मोढ़े पर गहरी नींद में है। उसकी पिस्तौल और बंदूक जमीन पर पड़ी हैं। बाहर से आती हुई सिटी की आवाज के साथ उसने झटपट पिस्तौल और बंदूक संभालीं और दरवाजा खोल दिया। बाहर एक नाव देखी गयी। उसे वापस आने में थोड़ा समय लगा। आज उसके हाथ में टिफिन नहीं था।

'आज खाना नहीं लाया?'

'तू खायेगी?'

'मैं भूखी मर जाऊँगी, पर तुमलोगों का खाना नहीं खायूंगी।'

'तो मैं भी नहीं खाता।'

जेरू आतंकी की तरफ अचरज से देखती रह गयी। उसके चेहरे पर अनेक भावों की लहरें थीं। उसे कुछ समझ नहीं आया। फिर वह अपनी दुनिया में चली गयी। घर जाने के लिए वह तरस रही थी। उन्हें जल्दी-जल्दी शादीकर दिल्ली जाना है। दया को नौकरी में जॉइन करना है, उसके एम.ए. का दाखिला लेना है। उसने आतंकी से पूछा-

'बताओ अभी क्या होनेवाला है? मुझे घर जाना है।'

'तेरे बाप ने हमारी एक भी शर्त नहीं मानी। फौज बुलाई गयी है। इसीलिए....'

'इसीलिए क्या?'

'तुझे मारने का हुक्म आया है।'

'क्या?' एक चित्कार के साथ जेरू खाट पर बैठ गयी।वह कांपने लगी। आतंकी की आँखें पानी से भर गयीं। 'मैं मरना नहीं चाहती।'

'मरना कौन चाहता है? हमारा दस्तूर है मारो नहीं तो मरो। हम दोनों में से एक को तो शायद मरना होगा ।'

'एक काम कर, तू ये सब छोड़ दे। चल, तू सरेंडर कर दे। तू भी बच जाएगा और मैं भी।' जेरू उसकी बाहें पकड़कर अधीरता से बोली। आतंकी ने उसके हाथ हटाकर कहा-'चक्रव्युह में

फँसा हुआ महारथी भी मात खा जाता है, मैं तो ठहरा एक अदना-सा आदमी। यह मुक्ति का रास्ता बड़ा भयंकर होता है रे। धरती को मुक्त करो या धरती से मुक्त हो जाओ। तकदीर बड़ा अबूझ खेल खेलती है कभी-कभी।'

जेरू को पहले अपनी जान की फिकर थी, अब उसे दो जानों की फिकर होने लगी। यह जवान लड़का, मुश्किल से उम्र जिसकी 23-24 साल की होगी, मकड़े के जाल में फँसी तितली-सा उसे लगा। आग और बारूद से भरे हुए दिमाग के इस चंचल उम्र के लड़के ने उसे छुआ तक नहीं, उसे देखा तक नहीं। कितना पवित्र है वह। उसे दया याद आती है। दया से तो प्यार उसे बाद में हुआ, पर जब वे सिर्फ दोस्त थे, तब भी उसमें इतना धीरज नहीं था।

'एक नाटक खेलना होगा हमें। जिंदगी का नाटक।' एकाएक आतंकी बोला।

'जिंदगी नाटक नहीं होती।'

'उससे ज्यादा भी तो नहीं रही अब।'

जेरू उत्सुकता से उसकी ओर देखती रही।

'दरवाजे पर ताला लगाकर मैं बाहर जाने के बहाने निकल जायूंगा। बाहर जाने के लिए जीतने समय चाहिए उतने समय के अंदर तुझे दरवाजा तोड़कर सैलानी की नाव पर चढ़ना है। यह बंदूक छोड़े जा रहा हूँ। जोर से दरवाजे को पीटना, बाँस का है, टूट जायेगा। उन्हें इतना कह देना कि तेरा घरवाला नाव लेकर निकल गया है। तुझे कुछ काम के लिए तट पर जाना है।'

'क्या! तुझे मैं अपना घरवाला कहूँ?'

'कह देने से थोड़े ही ऐसा हो जायेगा? बस लगना चाहिए कि तेरे भागने में मेरा कोई हाथ नहीं है।'

'अगर ऐसा नहीं लगा तो?'

आतंकी चुप है। उसकी नजर में एक स्नेहभरा कारुण्य था। जेरू को ये सब अजीब-सा लगा। 'हेपी मेरीद लाइफ' कहता हुआ आतंकी बाहर निकला और दरवाजे पर ताला लगा दिया। जेरू का समय शुरू हो गया था। वह जल्दी-जल्दी बंदूक की ट्रिगरवाली ओर से दरवाजे को धड़ाम-धड़ाम पीटने लगी। दरवाजा टूट गया और वह सैलानी की एक नाव पर चढ़ गयी।

जेरू जब घर पहुँची, उसका घर लोगों से भरा था। रोते-रोते माँ का चेहरा सूख गया था। बाप को अपनी बेटी पर बड़ा गर्व हुआ। अब तक पुलिस या मिलिटरी की मदद के बिना कोई भी उनके पल्ले से निकल नहीं पाया था। उसकी चारों ओर भीड़ जम गयी। भीड़ को धकेलता हुआ एक आदमी जेरू के पास पहुँचा। वह दया था।

'मैं तुझसे अकेले में बात करना चाहता हूँ।' वह जेरू को एक दूसरे कमरे तक ले गया।

'झोपड़ी में तेरे साथ क्या हुआ?' दया ने सवाल किया।

'कुछ नहीं। वहाँ एक आतंकी था। उसे अपने काम से काम था।' स्वाभाविक ढंग से जेरू बोली।

'चल अस्पताल चलते हैं, डाक्टरी जांच करवा लेते हैं। यह तेरे और मेरे रिश्ते का सवाल है।'

दया के ये शब्द जेरू के दिल में गोली की तरह जा धँसे। चौंकती हुयी जेरू उसे आँखें फाड़े देखने लगी। जिसके हाथों जेरू ने अपनी जिंदगी की पतवार थमा चुकी थी, उसके इस अद्‌भुत और अनाकांक्षित आचरण से वह स्तब्ध रह गयी। उसे यकीन नहीं हुआ कि उसके सामने का सुंदर, सुशिक्षित और परिचित लड़का इस तरह की यह बात कर रहा है। दया जेरू की आँखों में आँखें डाल अपने सवाल का जवाब ढूँढता हुआ दृढ़ता से खड़ा था।

'तुमने मेरे बारे में कुछ भी नहीं पूछा और सीधे यहाँ तक उतर आए! क्या देह से परे लड़की की और कोई पहचान नहीं होती? मैं तो तुम्हारे साथ गयी थी। मेरी रक्षा करना तुम्हारी जिम्मेदारी थी। अब तुम मेरी परीक्षा की बात कर रहे हो...'

'अगर तेरे साथ कुछ नहीं हुआ, तो जांच करने में तेरी नानी क्यों मरी जा रही है?'

'तुम मुझ पर शक कर रहे हो? पता है उसने मेरी तरफ देखा तक नहीं।'

'बात को गोलमोल मत घूमा। डाक्टरी जांच के बाद ही इस शादी की बात हो पायेगी।' दया ने अपनी बात पूरी कर दी।

जेरू वर्षों से जाननेवाले इस पुरुष का यह नया रूप देखकर मुँह बाये रह गयी। जिसके साथ उसने बचपन के सुनहरे पल काटे हैं, जवानी के दिनों भविष्य का सपना देखा है, जो कल तक उसे अपनी आत्मा का अभिन्न अंग मानता था, वही आज उसकी पवित्रता पर मुहर लगाने के लिए उसे चुनौती दे रहा है। जेरू के मन में विचारों का इतना प्रबल ज्वार उठा कि दया से जुड़ी उसकी सारी भवनाएं उसमें बह गयीं। जेरू को उसे न फ़ाई देने की जरूरत महसूस हुयी और न ही फटकारने की। साहित्य की छात्र जेरू को दया से कुछ कहने के लिए शब्दों की कमी खलने लगी। उसके अंदर से स्वत:स्फूर्त रूप से एक शब्द ने मुँह का रास्ता लिया- 'नहीं'।

दया वहाँ से निकल जाता है।

शाम होते-होते जेरू के घर से लोग जा चुके थे। रात को जेरू को थोड़ी तुर्सत मिली। माँ-बाप को अच्छा लगता अगर दया के साथ जेरू की शादी होती। पर सूझबूझ न होने पर शादी न होना ही ठीक है। वे इसी में बहुत खुश थे कि उनकी बेटी उन्हें मिल गयी। अब दया जेरू के लिए अजनबी बन चुका था। उसे आतंकी की याद आ रही थी।

सुबह जेरू बरामदे में बैठ वापस जाने के बारे में माँ से बातें कर रही थी। इतने में एक आदमी एक औरत और चार बच्चों के साथ उनके आँगन में खड़ा होता है। बच्चों में किसी की कमीज नहीं थी, तो किसी का चप्पल। उनलोगों को मछली देनेवाला मछुआरा अपने परिवार के साथ आया है।

'मेम साहब, हम बरबाद हो गये। झील की झोपड़ियाँ उठायी जाने लगी हैं। हम कहाँ जाये, क्या करें कुछ समझ में नहीं आ रहा है? हमें कुछ काम दे दीजिये। बाकी लोग भी काम की तलाश में निकले हैं। हम जल्दी-जल्दी आपके पास आये हैं।'

'तुम क्या काम करोगे भाई?' माँ की आवाज में लाचारी थी।

'कुछ भी। देख रही हैं न इन बच्चों को। इन्हें मैं कैसे जिंदा रखूँगा?' मछुआरा माँ के पैर पर सर रखकर रोने लगा।

जेरू की आँखों के सामने मछुआरों के परिवारों का सोमालिया घूमने लगा। सपनों की लोकटाक उजड़ रही है। कबतक लोकटाक के इन मछुआरों को ऐसे भटकते रहना होगा और कबतक लोकटाक को अपना प्राकृतिक रूप मिलेगा कहा नहीं जा सकता। उसकी आँखें भर आयीं। माँ ने उनकी बात पापा तक पहुँचाने की बात कहकर उन्हें विदा की। इतने में अखबारवाला अखबार दे जाता है। जेरू ने अन्यमनस्क होकर अखबार हाथ में उठा लिया। उसने पहले पन्ने में आतंकी का फोटो देखा। वह चौक गयी। फोटो के साथ समाचार था- 'वापसी मुठभेड़ में आतंकी ढेर:इम्फाल संवाददाता-कल रात एम.एम.एम. के आर्तकियों के बीच हुए आपसी मुठभेड़ में संगठन का सचिव कनखाम्ब की मौत होती है। लोकटाक में उसकी लाश पायी गयी है। उसके सर में गोली लगी है। हाल ही में हुए पुलिस अफसर की बेटी जेरू लैसाराम के अपहरण में उसका हाथ बताया गया है। उस पर जेरू को छुड़ाने का आरोप है। अपनी जान देकर उसने अपहृता लड़की को क्यों छुड़ाया, उसका कारण अब तक सामने नहीं आया है। उल्लेख किया जा सकता है कि कनखाम्ब इंजनीयरिंग का छात्र था। चार साल पहले वह संगठन में भर्ती हुआ था। वह विधवा माँ और पाँच बहनें छोड़ गया है।'

समाचार पढ़कर जेरू जोरों से रोने लगी। माँ भागती हुई उसके पास आती है और उसे क्या हुआ पूछती है। वह बस रोये जा रही है। माँ ने बेटी के हाथ का अखबार उठाकर उसमें आँखें फेरीं। उसने सामने दया का फोटो देखा। उसका इंटरव्यू छपा है। उसे मणिपुर का गर्व माना गया है। उसके हँसमुख चेहरे पर खुशी झलक रही है। माँ ने जेरू को सीने में समा लिया। रोती हुयी जेरू बोली -'मुझे पता ही नहीं चला, जिंदगी का नाटक वह अकेले खेल गया।'

डॉ. रीतामणि वैश्य, मो. : 9435116133, 9101452787
ई-मेल : ritamonibaishya841@gmail.com

✧ ✧ ✧

छोटी यात्राएँ

अम्बिका दत्त

मुझे याद आता है - करीब पैंतालीस -पचास साल पहले का वक्त रहा होगा। हमारी विषम विपन्नता का समय था। में प्राथमिक या उच्च प्राथमिक स्तर की किसी कक्षा का विद्यार्थी रहा होऊंगा । हमारे मोहल्ले गुसांई पांडे मे रहते थे गोपाल जी गुसांई । उनसे 'बूढे महाराज' शायद इसलिए कहते थे कि हमारे मोहल्ले में एक और गोपाल जी गुंसाई रहते थे और वे थोड़े जवान थे। बूढ़े महाराज की एक औरत थी, जो गुना की तरह की अलग भाषा बोलती थी। उसका स्वर तीखा, कुछ - कुछ कर्कश था। उसके चेहरे पर गुदना गुदा था। उसकी बोली और रहनगत की लोग मसखरी करते थे तो वह से चिढती थी।

आदमी यदि बड़ी-बड़ी और लम्बी यात्राएं न कर सके तो उसे, छोटी - छोटी यात्राएं करनी चाहिए। अपने आस-पास निकट की यात्राएं। सुबह निकले, शाम तक लौट आए। आदमी का मन मुसाफिर जैसा होना चाहिए। स्वभाव सन्यासी जैसा। सन्यास जन्म भर के लिए न लिया जा सके तो अल्पकालिक भी हो सकता है। एक दिन के लिए भी। सुबह अपने घर से निकले घर-बार सब कुछ छोड़ कर सन्यासी की तरह-मुसाफिर की तरह। शाम को वापस लौट आए ठिकाने पर गृहस्थ की तरह। घर पर रहे गृहस्थ की तरह। बाहर निकले मुसाफिर की तरह यात्री की तरह। सन्यासी की तरह।

अपनी संस्कृति में अनेक ऋषि - मुनि, सन्यासी गृहस्थ हुए, रहे और अभी भी रह रहे हैं। आसक्ति और निरासक्ति के मिले-जुले मन वाली ही है हमारी संस्कृति। इसमें दोनों के बिना काम नहीं चलता। ब्रह्म का काया के बिना। राग का विराग के बिना। इसे ही हम समन्वय साझेदारी या मिली-जुली संस्कृति कहते हैं। इसी मानसिकता का निर्वाह अनेक लोग सद्भावी होकर करते हैं। कर रहे हैं। जीवन कोई सा भी हो-उसका सद्भावी होना बुनियादी और पहली शर्त है। पाखण्ड और आडम्बर का मेल समन्वय नहीं है-वह मिलावट है। प्रदूषण है। समन्वय, समायोजन, सहअस्तित्व का अत्यन्त रोचक, मनमोहक उदाहरण, रूपक है-जल में कमल की तरह।

दो पाटन के बीच में

1. के. पाटन

ये दो पाट कबीर वाले पाट नहीं हैं। जिनके बीच में कोई साबुत नहीं बचता। ये पौराणिक भारत के लोकविश्रुत अष्ट पतनों में से दो पत्तन, पट्न, पाटण या पाटन हैं। एक केशवराय पाटन और दूसरी झालरापाटन। एक चन्द्रभागा नदी के किनारे है। दूसरी चम्बल के किनारे। हम कोटा में रहते हैं। दोनों के बीच में। इसीलिए कहा दो पतन के बीच में। शायद ये कबीर वाले पाट नहीं हैं, इसलिए हम बचे हुए हैं।

मेरे मन में कई बार आया कि में जिन जिन जगहों पर रहा, उन जगहों के बारे में कभी कुछ लिखूं। में राजस्थान के कई स्थानो पर रहा। प्रतापगढ़ के अरनोद, सालमगढ, बोडीण्सागथली, बेगूं में, अपनी किशोरावस्था में। अन्ता तो मेरा मूल निवास है ही। बारां में रहकर पढ़ाई की। टोंक, मनोहरथाना (झालावाड), लूनकरणसर (बीकानेर), बूंदी, बांसवाडा, बागीदोरा, झालरापाटन (झालावाड़) सवाईमाधोपुर, बायतू (बाडमेर), छबड़ा, खानपुर, सांगोद में भी नौकरी की वजह से रहना हुआ। अलग - अलग जगह की अपनी अलग - अलग खासियत है। अलग अनुभव। कई बार कई जगहों पर रहना तो नहीं हुआ पर जाना हुआ। कई जगहों का एक अजीब आकर्षण मुझे बार - बार वहां जाने के लिए खींचता रहा है। जैसे चित्तोड़ का किला। मऊ के महल। पुष्कर। छबड़ा। नागदा। इसी कोटि में केशवराय पाटन भी है। केशवराय पाटन को ही के पाटन कहते हैं शोर्ट में। जैसे झालरापाटन को झा .पाटन।

के. पाटन मेरा रहना नही हुआ पर जाना हुआ। चम्बल नदी के किनारे ऊंचा - नीचा बसा हुआ कस्बा के. पाटन मुझे हमेशा एक खास रहस्यात्मकता के कारण आकर्षित करता रहा।

मुझे याद आता है - करीब पैंतालीस -पचास साल पहले का वक्त रहा होगा। हमारी विषम विपन्नता का समय था। में प्राथमिक या उच्च प्राथमिक स्तर की किसी कक्षा का विद्यार्थी रहा होऊंगा। हमारे मोहल्ले गुसांई पांडे मे रहते थे गोपाल जी गुसांई। उनसे 'बूढे महाराज' शायद इसलिए कहते थे कि हमारे मोहल्ले में एक और गोपाल जी गुंसाई रहते थे और वे थोड़े जवान थे। बूढ़े महाराज की एक औरत थी, जो गुना की तरह की अलग भाषा बोलती थी। उसका स्वर तीखा, कुछ - कुछ कर्कश था। उसके चेहरे पर गुदना गुदा था। उसकी बोली और रहनगत की लोग मसखरी करते थे तो वह से चिढती थी। लोगों को उसे चिढाने में मजा आता था। वह घर के अंदर से ही उसकी अपनी बोली में अटपटी गालियाँ निकालती रहती थी। हमारे लिए तो बस एक कौतुहल था। तो उन्ही बूढे महाराज को किसी काम से के.पाटन जाना था - मेरा उनके साथ जाने का सुयोग कैसे हुआ ठीक से याद नही। कोटा जंक्शन से उतर कर रंगपुर की तरफ पैदल जाना और नाव से नदी पार कर के के.पाटन पहुंचना याद है। वहां हमारे रिश्ते के चाचा राधामोहन जी चतुर्वेदी रहते थे। वैसे सद्भावी, हार्दिक-आत्मिक स्नेह रखने वाले लोग अब नहीं मिलते। सीधे, सज्जन, शान्त। बीड़ी पीते थे। शायद चिलम तम्बाकू का भी शौक था। खूब खेती-बाड़ी। पर इन से बढ़कर उनका स्नेह भाव। उनकी आत्मीयता का साक्षात्कार, बाद में बड़े होने पर भी, अभी कुछ वर्षों पहले तक, जब वे जीवित थे, मिलने पर होता रहता था। उन्होंने मूझे एक सूती स्वेटर दिलाया। दस

पन्द्रह किलो अनाज दिया। जो मुझसे तो उठना संभव ही नहीं था। गोपाल महाराज ने अपने कंधे पर वो गाँठ धरली। उसे लेकर पैदल चल रहे बूढ़े महाराज की वह छवि स्मृति में अभी भी शेष है। चाचाजी न रहने के उपरान्त चाचीजी ने और उनके पुत्रों ने इस आत्मीय स्नेह भाव को अभी तक यथावत बनाए रखा है। सम्बन्धों की खरी आत्मीयता इस शुष्क औपचारिक समय में कितनी तरावट देती है – यह अनुभव करने की ही बात है। कहने – सुनने से भी उन्ही को लगती है जिनको इसका अनुभव होता है।

चाचाजी के परिवार की शादियों में आना – जाना होता रहता है। अभी परसों ही शाम को एक शादी में के. पाटन जाना हुआ। पर रातको ही लौट आए। जब भी जाते हैं, नदी किनारे बने प्राचीन पौराणिक काल के कहे जाने वाले मन्दिर में केशवराय जी के मन्दिर में जाना होता है।

परसों से पहले जब संध्या समय गए थे तब मन्दिर से नदी का नजारा देख कर बिंध गए थे। सोचा था–आना तो एक बार फिर पड़ेगा । लोग कहते हैं केशवराय जी बुलाते हैं। परसों गए तब रात हो गई थी पर दर्शन के पट खुले थे। सब कुछ हुआ, बात फिर वही कि–आना तो एक बार और है।

आज सुबह जब बाग में घूमने गये तब, तकरीबन सात बजे होंगे। यकायक क्या जची चलो – पाटन चलें। नागेन्द्र जी मिले – उनसे बात हुई। उन्होनें कहा चलो। हालांकि कहने को रविवार, छुटी का दिन है – लेकिन नागेन्द्र जी और हमारे तो रोज ही छुटी है।

कोटा से पाटन पहुँचने के दो रास्ते हैं – एक तो नयापुरा – चम्बल पुलिया से बूंदी रोड़ पर लालसोट दौसा रोड की तरफ मुड़ जाओ। आगे इसी मुख्य सड़क पर के. पाटन है। सड़क से मुश्किल से 3 – 4 कि.मी. अन्दर। इस रास्ते से लगभग 28 कि.मी. पड़ता है पाटन। परसों हम इसी रास्ते से गए – आए। एक और रास्ता है रंगपुर होकर। नदी, चम्बल पार करके के. पाटन। आज हमने सोचा रंगपुर होकर चलें।

हल्की सर्दियों की सुबह है। सुखद। रेलवे ओवर ब्रिज पार करते ही रंगपुर रोड़। रंगपुर – 14 कि.मी.। दोनों तरफ – रोटेदा, भदाना गांवों में आवासीय कोलोनियां विकसित हो चुकी हैं। और हो रही हैं। शेष बचे खेतों में जिस हरियाली पर प्रातः कालीन सूर्योदय की सुषमा सुशोभित है देखिए ये कब तक बची रहे। रास्ते में गिटी (कंक्रीट) बनाने का क्रेशर भी मिला और कचरे से बिजली बनाने वाला कारखाना भी।

रंगपुर नदी के किनारे ही बसा है। गांव के बाद नदी की ढलान शुरू। दोनो तरफ झाड़ियां और गन्दगी। गांव का गन्दा पानी भी बहकर नदी में ही जाता है।

नदी – कभी भी देखो। आल्हादकारी है। इस चम्बल नदी का महात्म्य पुराणों में वर्णित है।

(नदी महात्मय)

चर्मणाम् पर्वतो जानो विन्ध्याचल समःपुनः

मेधाम्बु प्लावनःज्जाता नदी चर्मण्वती शुभः

(देवी भागवत – 1 स्कन्द 12 अ0 15 श्लोक)

उपर्युक्त श्लोक के आधार पर शश राजा के यज्ञ में जो पशु बलि हुई उनके चर्म के ढेर से चर्मण्वती का उद्‌गम माना जाता है।

आसन्दीवदष्ठी की वच्चक्रीवत्कक्षीवत रूपण व च्चर्मण्वती नदी संज्ञा प्रकट करने के लिए न का लोप नही हुआ और न् का ण् हो गया इस तरह चर्मण्वती हुआ। इस नदी के रक्त रंजित जल को देखकर लोग इसमें स्नानादि किया नही करते थे किन्तु एक ऋषि के वरदान से इस नदी का जल स्वच्छ हो गया।

देश में दक्षिण से उत्तर की ओर बहने वाली नदियों में यह सबसे महत्वपूर्ण है। इन्दौर के निकट विन्ध्य क्षेत्र से निकल कर उत्तर की ओर अग्रसर होती है। मध्यप्रदेश से मंदसौर जिले में चौरासीगढ़ नामक क्षेत्र में यह राजस्थान की सीमा को छूती हुई बहती है। कोटा से कुछ आगे यह पूर्व की ओर मुड़ जाती है। शायद इसी वजह से यह नदी और इसके तट पर बना मन्दिर तीर्थ हो गए।

इस पार, नदी के किनारे, दो-तीन चाय की टपरियों में कुछ लोग बैठे थे। चाय बनाने का सामान। स्टोव। हवा रोकने का मुड़ा हुआ चद्दर। कीटे से भरा। जगन्नाथ जी था उनका नाम जिनके ठिये पर हमने पांच रूपये की एक चाय पी। डिस्पोजल कागज के छोटे से कप में। डोरी बांध कर लटकाई हुई तम्बाकू गुटखे की बन्दनवार।

तीन चार ओटो खड़े थे। दो तीन और आ गए। शायद यहीं के हैं। यहां से कोटा - आना जाना करते होगें।

उस पार जाने के लिए नाव दरकार थी। तीन चार नावें किनारे पर थी तो सही पर वे रेत निकालने वाली थीं। चम्बल से निकाली रेत काली होती है। चुनाई में काम आती है। बनास की उजली। प्लास्टर में काम आती है। सवारियां लाने ले जाने वाली नाव उस पार थी। उसके आने तक इन्तजार करना पड़ेगा।

उस पार स्थित ऊंचा केशोराय जी का मंन्दिर सूर्योदय की धूप में दिव्य आभा से शोभायमान हो रहा था। नदी का विस्तृत पाट। उस पर चमकती रक्ताभ - स्वर्णिम प्रभा। किलोल करते पक्षी। इधर-उधर हिलती डुलती नावें। कहने से पार नही पड़ती। मोबाइल बिचारे के कैमरे की ताब कितनी सी। फिर भी। उस पार से नाव न आवे तब तक का वक्त तो गुजारना था। नदी किनारे मानवत गन्दगी के अवशेष पड़े थे। चिथड़े, मलादि, करकट। पास ही एक चबूतरे पर कई सारी सिन्दूर पुती अनगढ गोल पाषाण प्रतिमाएं धरी थी। कोई सुबह-सुबह ही धूप अगरबत्ती कर गया था। जलहरी पर एक शिवलिंग और फनधारी नाग का विग्रह इन लोक देवताओं के बीच अभिजात्य सा लग रहा था। सिन्दूरी पुती गोल पाषाण प्रतिमाओं में से दो पर चमकीले कागज से आंख, नाक, आदि बनाकर मुखाति का रूप दिया था। एक प्रतिमा पर सफेद अंगोछा और दूसरी पर लाल कपड़ा लुगडी की तरह ओढ़ाया हुआ था। हमने अनुमान लगाया एक भेरू जी और एक माताजी होंगे। गांव वाले देवताओं को पूजते रहते हैं - कुछ भी मानकर। देवता कौन से हैं इसका उन्हे कई बार ठीक से पता नहीं होता। आस्था अंधी न हो भले ही पर धुंधली जरूर होती है। बाद में नाव में चर्चा चली तो किसी ने बताया 'सगस' जी है। 'सगस' जी माने लोक देवता। पास कई झाड़ियां थी। अरण्ड के पेड़

और पीली कटेली। बरसों बाद देखी पीली कटेली। पुंवाड़, पीली कटेली, बैंगन कटेली जैसी स्थानीय वनस्पतियां पिछले कुछ समय से विलुप्त होती दिखती हैं। स्थानीय वनस्पतियों का विलुप्त होना क्या पर्यावरण और पारिस्थितिकी विज्ञान का ही विषय है। साहित्यिक - सांस्कृतिक लोगों को इस बारे में कुछ सोचना - विचारना नहीं चाहिए।

नाव आगई थी पर हम दो (मैं और नागेन्द जी) और तीसरे एक साईकिल वाले के सिवाय कोई सवारी न थी। हां एक लड़का भी तो था राकेश। सातवीं में पढता है। केशव पाटन रहता है। यहां रंगपुर में मौसी के यहां आया था। उसका किराया नही लगता। वह कीर (केवट) जाति का है। नाववाला हमें ही ले जाने को राजी हो गया। एक सवारी और आन बैठी। नाव हिली ही थी कि एक मोटर साइकिल और एक स्त्री पुरूष और आ गए। पार जाने के लिए। वापस नाव किनारे लगाई। उन्हें चढाया इतने में दो लड़के और आ गए। तगारी में केदारें (लौकी) और भटे (बेंगन) लेकर। के. पाटन में बेचने के लिए ले जा रहे थे। एक ने कहा दिन भर कौन बेचेगा-बोली में दे आएंगे। नोट बंदी के बाद और कुछ सस्ता हुआ हो या न हुआ हो सब्जीयां सस्ती हुई हैं। मारा जाता है बिचारा किसान। इस मौसम में वैसे ही भाव न मिलने और वापस ले जाने के खर्चे से बचने की वजह से सब्जियां सड़क पर फेंक देने की खबरें हर साल आती हैं।

नदी के उस पार से बार-बार ठक-ठक की आवाज सुनाई दे रही थी। नई नाव बनाई जा रही थी। बबूल की। कोहड़े की यानि अर्जुन की लकड़ी अब मिलती कहां है? कहां गई वह लकड़ी? जवाब सब जानते हैं। एक लाख की पड़ती है नाव।

किनारे पर खींच कर मोटर साईकिल उतारी। सवारियां भी उतर गई। दस रूप्या सवारी।

नदी किनारे मन्दिर की दीवार से पानी तक के बीच की जगह पक्की है। सड़क, घाट, मैदान।

कुछ दिन पहले यहां मेला भरा था। हाड़ौती का तीर्थ है। कार्तिक स्नान का मेला। मेला खत्म हो गया फिर भी कुछ दुकानदार अभी भी दुकानें लगाए बैठे हैं। लोहे के सामान वाले। बड़े -बड़े कढाह, ड्रम, तसले, बक्से वगैरा। स्थानीय और आस-पास के लोग अपनी जरूरत के मुताबिक अभी भी खरीददारी करते होंगे। झूले वाले ने भी अपने झूलों का ढांचा खोल कर पटक रखा है - सीधे ही अगले मेले में जाएंगे। बीच में कहां रूकें। इतना सामान कहां रखें। नागेन्द्र जी की जिज्ञासा थी ये आगे कहां जाएंगे पूछने पर पता चला-रामगंजमंड़ी जाएंगे।

एक दो चाय की टापरियां हैं। नदी के किनारे - किनारे घाट बने हैं। जनाना - मर्दाना। घाट के थोड़ा ऊपर कई सारी समाधियों के चबूतरे बने हैं। प्राचीन। अति प्राचीन। नए - पुराने पत्थर अलग से दिखते हैं। किनके स्मारक हैं ये समाधियां? शायद कोई संत महात्मा रहे होंगे। ठीक से कोई जानता नहीं। कई समाधियों पर हाथी-घोड़े, बत्तख के पेनल बने हैं। चबूतरे पर शिवलिंग स्थापित है। किसी पर नंदी भी। कुछ प्रस्तर खण्डों पर कुछ इबारत खोदकर उकेरी गई है। मानो ये मूक प्रस्तर अपना हृदय खोलकर अपने बारे में बताने को तत्पर हैं। पर कौन पढे? किसको आता है इन्हें पढ़ना - बांचना? किसे रूचि है किसे फुरसत कि कोई इन्हें पढ़े। जब पत्थरों पर लिखा हुआ अमिट ही आने वाले समय में न पढ़ा जाने वाला अज्ञात अस्तित्वहीन हो जाता है तो हम जैसे अनेक

लेखक किस उम्मीद में कागज काले कर रहें है।

(उड़ते हुऐ पक्षी आकाश पर अक्षर लिखते हैं लेकिन गूंगी धारा उसे पढ़ नहीं पाता, बोल नहीं पाता ऐसी कविता की पंक्तियाँ हाड़ोती के अग्रज कवि रधुराज सिंह जी हाड़ा ने अपने एक गीत में रची हैं -

उड़ता पखेरू मांडै आंरवर गगन में

गूंगी धारा पे कोई बांचौ न बोले रे!!

पत्थरों पर लिखे अक्षरों को न बांचने की व्यथा भी शायद किसी कवि ने लिखी हो।

कुछ सतियों के स्थान भी है। भारतीय समाज की सती प्रथा के सम्बन्ध में शासन द्वारा संख्त कानून बना देने के उपरान्त क्या भारतीय जनमानस के स्वभाव की जटिलताओं, द्वन्दों, जड़ताओं, वितियों, परम्पराओं, आदर्शो, मूल्यों, स्थापनाओं मान्यताओं और इन सती विग्रहों पर विमर्श करने के दरवाजों को भी बन्द कर देना चाहिए? अभी भी इन पर पूजा - अर्चना के ताजे अवशेष मौजूद हैं। समाधियों, सतियों, छतरियों, तिबारियों पर कई जगह जमनालाल जी का नाम और उनके मोबाइल नंम्बर मंडे हुऐ है। यानि लिखे है। जमनाशंकर सेन जी 9799217654। हमने सोचा संभवत: कोई जनप्रतिनिधि या सन्दर्भ व्यक्ति होंगें। किन्तु एक दीवार पर लिखी सूचना देख कर हम समझ गए ये किसके नम्बर हैं। लिखा था मुंडन कराने के लिए सम्पर्क करें जमनालाल सेन जी व मोबा. नं. । नदी है तीर्थ है - मृत्योपरान्त होने वाले कर्मकाण्डों के लिए सुलभ उपयुक्त स्थान इससे ज्यादा दूसरा क्या होगा। यत्र-तत्र कण्डों की राख, के संकेत साक्ष्य इसकी पुष्टि कर रहे थें। स्वाभाविक है, मृत्योपरान्त होने वाले कर्मकाण्डों में परिजन की मृत्यु की शोक - विपदा में पड़ा हुआ व्यक्ति यहां घाट पर आकर अकस्मात नापित को, सेनजी को ढूँढने कहां जाएगा। उसे कष्ट असुविधा न हो इसलिए सेन जी ने अपने नाम और मोबाइल नं इतनी प्रचुरता से इतनी जगह प्रदर्शित कर रखे हैं। इसके पीछे किसी प्रकार की दुर्भावना तलाशने का अपकर्म इस पुण्य सलिला, पावन - सदानीरा चम्बल के तट पर कोई सनानन धर्म संस्कारी तो शायद ही करे।

नदी पश्चिम से पूर्व की तरफ बह रही है-अद्‌भुत - अभी तक सभी नदियों के दौड़कर समुद्र की तरफ जाने की ही बात देखी सुनी थी। किसी नदी के पूर्व दिशा में सूर्य - संगमार्थ प्रवाह की तात्कालिक कल्पना भी अभिनव अवधारणा जैसी लगी।

दक्षिण में नदी के उस पार रंगपुर और उत्तर में केशवराय जी के मन्दिर की कगार को सुद्रढ़ता प्रदान करती हुई, किले या शहर पनाह जैसी मोटी दीवार द्य इस पर बनी बुर्जियां। दाहिनी तरफ ऊपर जाने की सीढियां। इनके ऊपर उच्च, दिव्य, केशवराय जी का मन्दिर, शिखर। ये सीढियां, नदी के किनारे बने रंगमंच के समक्ष एक दर्शक दीर्घा - या आडिटोरियम का काम भी करती हैं। जब मेले में या अन्य किसी अवसर पर कोई सभा या सांस्कृतिक कार्यक्रम होता है।

हम किनारा, किनारे पर धूप में स्नान करते लोगों और अपनी स्नान करने की इच्छा को पीछे नीचे छोड़ते हुए सीढियां चढ़ने लगे। तकरीबन अस्सी सीढ़ियां होंगी।

हम मन्दिर से पन्द्रह सीढ़ीयों पहले बांई तरफ बने मंन्दिर के आधार के तल में बनी

कोठरियों में स्थित सरकारी स्कूल की तरफ से घुसे। छुटी थी। मन्दिर के नीचे की कोठरियों के सामने दो तोरण द्वार बने थे। कब किसने बनवाए क्यूं बनवाए हमारे लिए जानने समझने को कोई स्रोत न था। घूम कर उस मार्ग पर आ गए जो कस्बे से मन्दिर में आता था। थोडी चढ़ाई चढ़कर जिस आधार पर मन्दिर खड़ा है वहां आ गए। मुख्य मन्दिर, गर्भ - गृह और मंडप पुराना है। किस काल का कहना मुश्किल है। क्यूंकि जो आख्यान है वह तो पौराणिक काल का है। मन्दिर के सन्दर्भ सूत्र इसे विष्णु तीर्थ बताते हैं। इस तीर्थ का बर्णन स्कन्द पुराण, पद्म पुराण, और वायु पुराण में भी उपलब्ध होना कहा गया है, शायद हो। तथापि पुराण जितने प्राचीन हैं, और जिन पुराणों में इसका उल्लेख है। यह तीर्थ उन पुराणों, उनकी रचना से पूर्व ही स्थापित होकर ख्याति प्राप्त हो चुका होगा तभी तो इन पुराणों में इसका उल्लेख किया गया। यह हमारा विषय नहीं है। अपनी धरोहर को स्मारको, परम्परा को प्राचीनतम, सनातन कहने का अपना एक अतीतोस्मृत गौरव है, तो उसे प्रमाणित सिद्ध करने की कठिन चुनौती भी है। तथापि पुरातनता का अपना एक रहस्याभिभूत करता आकर्षण तो है ही - उससे कौन बच सकता है?

पिछली से पिछली बार जब में कोटा विश्वविद्यालय में था तब एक बार आया था तो जमनालाल जी मिले थे। आग्रह पूर्वक। जमनालाल जी केशवराय जी महाराज के पुजारी हैं। पाटन कन्या महाविद्यालय के अध्यक्ष हैं। वेदपाठी हैं। अपने घर से बाहर कहीं भी भोजन न करने का व्रत कई वर्षों से ले रखा है। पुत्र के विवाह के अवसर पर भी समधी के यहां भोजन नहीं किया था। ऐसे वीरव्रती हैं। ये उन्होंने पिछली बार की मुलाकात में बताया था।

मन्दिर के बाहर, पाषाणों पर उत्कीर्ण, शिल्प को देखने सराहते मैं और नगेन्द्र जी जब सीढ़ियां चढ़ कर मुख्य मन्दिर के मण्डप, में गए तो एक तरफ जमनालाल जी पारायण करते दिखे। वे मुझे शायद नहीं पहचान रहे थे। मैनें नमस्कार किया। उन्होंने इशारे से मुझे बुलाकर प्रसाद स्वरूप, चार-पांच किशमिश दिए। वे अपना पाठ भंग न करना चाहते होंगे इसलिए कुछ बोले नहीं लेकिन मेरे वापिस मुड़ते वक्त उन्होंने एक हूँकारी देकर मेरा ध्यान आकर्षित किया। बुलाकर एक छपा हुआ परचा दिया। ये परचा उन्होंने पिछली बार भी दिया था। कहीं रखने में आ गया। इस बार तो मैने संभाल ही लिया। लीगल साइज के सफेद परचे पर लाल रोशनाई से छपे इस परचे में श्रीगणेशाय नमः के नीचे मोटे अक्षरों में पट्टनपुर 'महात्म्यम' और उसके नीचे 'श्री केशवराय भगवान का प्राकटय' छपा है। इसके नीचे, बांई तरफ श्री केशवराय जी की प्रतिमा का चित्र और स्तुति के बीच में जो वर्णन है वो इस प्रकार है :-

''राजा दुष्यन्त के पुत्र सम्राट भरत के दत्तक पुत्र वितथ के पुत्र मन्यु के पुत्र नर के पुत्र संति के पुत्र रन्तिदेव ने न्याय पूर्वक धन संग्रह कर अपनी राजधानी माहिष्मती के पास एक विशाल यज्ञ किया। यज्ञान्त में अवभृत स्नान किया तब एक जलधारा राजा के मृग चर्म के आसन को छूती हुई निकली व आकाशवाणी हुई ''यह जलधारा जम्बू मार्गारण्य में पहुंच कर लोक कल्याणकारिणी, पापनाशिनी चर्मण्यवती गंगा हो जावेगी। कालान्तर में राजा रन्तिदेव ने अपनी तपस्या से त्रिदेव को प्रसन्न किया व कार्तिक शुक्ल अक्षय नवमी को सप्तणषि एवम् वेदज्ञ ब्राह्मणों तथा बन्धु बान्धवों के साथ चर्मण्यवती के पावन तट से पंचकोशी परिक्रमा की व देव प्रबोधनी एकादशी को ब्रहम मुहुर्त मे चर्मण्यवती में स्नान किया। स्नान के अनन्तर राजा को आदि ब्रहम के

स्वरूप का दिव्य दर्शन हुआ व आकाश से दिव्य पुष्पों की वृष्टि हुई तथा आकाशवाणी हुई यहां केशव प्रकट होंगे तदन्तर जहां पुष्प एकत्रित हुए वहां पर भगवान केशव के श्री विग्रह का प्राकटय हुआ और राजा ने स्तुति की।

पहले जिस मन्दिर में स्थापना की गई थी वह जीर्ण हो गया था। तब बून्दी नरेश को स्वप्न दिया कि अपनी वंश वृद्धि चाहता है तो मेरा भव्य मन्दिर बना तब राजा शत्रुशाल्य हाड़ा ने यह भव्य मन्दिर बनवाकर सं 1698 कार्तिक शुल्क एकादशी शुक्रवार को प्रतिष्ठा करवा कर उमरथूनियां मालवी श्री गौड़ बड़ी सभा के वंशज का चरण पूजन कर सेवा पूजा का भार सौंपा व अपनी कुलदेवी हाड़ा वंश की आशापुरा की भी स्थापना निज मन्दिर में करवाई। इस स्थान पर जम्बू मार्गेश्वर महादेव का पूजन भगवान परशुराम ने शांति प्राप्ति हेतु किया था। यहाँ पर चर्मण्यवती पूर्व वाहिनी धनुषाकार रूप् में है। इसके तट पर गौ तीर्थ, हंसतीर्थ, ब्रहमतीर्थ, सरस्वती तीर्थ, रूद्रतीर्थ, विष्णु तीर्थ, अग्नितीर्थ. ऋणमोचन तीर्थ, पापमोचन तीर्थ परशुराम तीर्थ (सौपर्ण तीर्थ) स्वर्ग द्वार सहित द्वादश तीर्थ हैं।''

इसके नीचे जमनादास जी द्वारा विरचित केशवाष्टकम छपा है। केशववाष्टक से कष्ट निवारण और मनोवांछित फल प्राप्त होने का महात्म्य भी अंकित है।

केशवराय जी के दर्शन करना एक अनुभव है।

वहीं हमारी कोलोनी के एक महानुभाव मिले। सपरिवार आए रहे। मन्दिर के बाहर आकर मन्दिर के चारों तरफ परिक्रमा करते हुए पुनः मन्दिर पर जड़ित, उत्कीर्ण, प्राचीन पाषाण शिल्प और स्थापत्य देखकर, सराहकर अभिभूत हुए। हाथियों घोड़ों का लम्बा पैनल, तीनों तरफ है। विष्णु, ब्रहमा, शिव, दुर्गा, आदि देवों, यक्ष, गन्धर्व, लक्ष्मी, मनुष्यों के कई वर्ग और उनके व्यवहार इनके विविध विषय हैं। गहन और विशद वर्णन का विषय हैं। प्राचीन और बाद के निर्माण की स्थिति भी दिखाई देती है। स्थापत्य की प्राचीन शैली और बाद की मिश्रित राजपूत मुगल शैली।

मन्दिर परिसर में और भी अनेक मन्दिर हैं। संकट मोचन हनुमान जी, जम्बू मार्गेश्वर महादेव, गंगा जी, चारभुजा (लक्ष्मीनारायण), बलराम जी। इसके अतिरिक्त एक बैहमाता का भी मन्दिर है। बैह माता शास्त्र की नहीं लोक की अवधारणा है। शास्त्र में सृष्टि – मनुष्य के भाग्य का विधाता ब्रह्मा हैं किन्तु लोक में बै माता है। मानते है कि कर्मो के लेख बै माता लिखती है। मन्दिर में मूर्ति देख कर थोड़ा असमंजस हुआ। कोई प्राचीन प्रतिमा, उस काल – देश की, जब जहां बै माता की अवधारणा ही नहीं रही होगी तब की, स्थापित है। एक वराह की प्रतिमा भी है। शायद देवी प्रतिमा है। लोक ने उसे ही बै माता मानकर स्थापित कर दिया। लोक महान है। उसकी मान्यताएं परम्पराएं तर्कातीत हैं।

उतरते समय हम दूसरे रास्ते से उतरे। नदी ही की तरफ। कस्बे की तरफ जाने वाले मार्ग पर नहीं गए। सीढ़ियों पर पुष्प माला आदि बेचने वाले आ बैठे थे। धूप भी चढ़ आई थी।

नाव उस पार गई हुई थी। एक ही है। इस पार आनी थी। कुछ बच्चे खुली जगह में गिल्ली-डण्डा खेल रहे थे। ओह! किकेट के भयावह, आक्रामक, संक्रमण के बीच बचा हुआ गिल्ली डण्डा ।

एक चाय की टापरी में बैठ कर नावकी प्रतीक्षा करने लगे। चायवाला भी कीर है। बातचीत की जमीन थोड़ी मुलायम हो जाए तो सामने वाला दिल खोल देता है। उसने अपने बच्चों के लिए एक टाटा मैजिक खरीदा था। फायनेन्स कराया। आर.टी.ओ. की टेक्स नहीं भरी तो उन्होंने टाटा मैजिक जप्त कर ली। बैंक से लोन लेकर लाइफटाइम टेक्स चुकाया तो फायनेन्स वालों की किश्तें पिछड़ गईं। टाटा मैजिक आर.टी.ओ. से छूटा तो फायनेन्स वालों ने धर लिया। अभी उनके ही पास है। इनके पास गाड़ी है नहीं। फायनेन्स की बकाया और बैंक से लोन लिया उसकी किश्तें बिना घटे चढ़ती जा रही हैं। चाय औटाते समय शायद उसके दर्द का हिस्सा भी उसमें शामिल हो गया था। वरना चाय इतनी कड़क क्यूं होती। हर चाय वाला इतना किस्मतवर नहीं होता।

नाव आ गई थी। इसमें से दो मोटर साईकिलें भी उतरी। एक कट्टा चढ़ाया गया। दो नौजवान ले जा रहे थें। किसी की शवदाह के बाद की राख थी। अधबीच नदी में खाली कर दी गई थी। एक तगारी में सेर सवा सेर के करीब आटा जो वो लाए थें गूंधकर उसकी गोलियां नदी में मछलियों को डाली। ये मृतात्मा के निमित किया गया पुण्य है। नाव में अभी एक मोटर साइकिल भी है।

किनारे की टपरी में जहां सुबह चाय पी थी - वहां जगन्नाथ जी, (यही नाम बताया उन्होंने) की दुकान पर तजा तले हुए समोसे और कचोरियां धरे थे। उनकी पत्नि आ गई थी। वही बेल, भर रही थी। उन्होंने तो सिर्फ तले। स्टोव को हवा से बचाने के लिए जो मुड़ा हुआ टीन लगा था उस पर बाहर की तरफ गजब का कीटा (काली चिकनाई) जमा हुआ था।

नागेन्द्र जी ने कचौरी। ली मैंने समोसा। संग चटनी भी। स्वाद चटपटा था। वक्त भी सही था। पानी पिया। लौट लिए।

अभी इस बार रंगपुर की तरफ से जाना हुआ है। नागेन्द्र जी का सुझाव है- अगली बार बस से लालसोट - दौसा रोड़ होकर चलेंगे। अभी तो एक बार के. पाटन कस्बे को, यहाँ के जैन अतिशय तीर्थ को देखना है। यहाँ के लोगों, ऊची-नीची गलियों बाजारों से मिलना अभी बाकी है। उसका आकर्षण भी शेष है। देखिए कब आना होता है। दुआ करते हैं। जल्दी हो। और अभी दूसरी पाटन झालरा पाटन भी तो बाकी है।

अम्बिका दत्त, बी–2, 11 न्यू कॉलोनी, गुमानपुरा कोटा (राजस्थान)–324007
फोन नं.–0744239001, मो. : 9460939123, 9799110599, ई–मेल–ambikadutt2@gmail.com

✧ ✧ ✧

मानस में नारी

डॉ. नीलिमा मिश्रा

तुलसीदास जी ने इन चौपाइयों के माध्यम से स्त्री के सम्मान को सुरक्षित करने और मनुष्य की कुष्टि से बचने का उपाय माना है। इनमें लोक कल्याण की भावना छिपी है। गोस्वामी जी जिस काल में थे वो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अवसान का युग था। चारों ओर भोग विलास और अर्थोपार्जन में ही लोग लगे थे। लोगों मे स्त्रैण भावना इतनी प्रबल थी कि सारी मर्यादाएँ टूट रही थीं। तपसी तुलसीदास जी ने उस लोभी, मूर्ख और कामुक समाज को रूप सौन्दर्य का पाठ पढ़ाने के बजाय सत्य मार्ग पर ले जाने का कार्य किया। अपनी विवाहिता को घर से निकाल कर परायी स्त्री को घर में बैठा कर लोग गर्वित हो रहे थे।

गोस्वामी तुलसीदास कृत रामचरित मानस न सिर्फ भारत वरन् विश्वसाहित्य की अनुपम धरोहर है। बड़े-बड़े विदेशी विद्वान भी तुलसीदास जी की अलौकिक विद्या, बुद्धि और प्रतिभा का आदर एवं सत्कार करते हैं। जीवन के हर क्षेत्र को मानस की पृष्ठभूमि पर समझा और देखा जा सकता है। रामचरित मानस ऐसी लोकग्राह्य कृति है जिसमें समाज के लगभग हर एक वर्ग के रेखांकन की सूक्ष्मता को अत्यंत पैनी एवं गंभीर दृष्टि से देखा जा सकता है। तुलसीदास समन्वयवादी लोककवि हैं, जो मानस में राजा-प्रजा, नर-नारी, नर-वानर, दास-स्वामी, भक्त-भगवान अनेक वर्गों में समन्वय का दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। मानस में गोस्वामी जी ने नारी के विविध रूपों का वर्णन किया है। एक ओर उसमें जहाँ कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता, उर्मिला, अनसुया, शबरी जैसी महान स्त्रियों का चित्रण किया है तो दूसरी ओर मन्थरा, शूर्पणखा, लंकिनी जैसी दुष्टा स्त्रियों का वर्णन किया है।

गोस्वामी जी की निन्दा इस बात को लेकर बहुत है कि उन्होंने नारी की बहुत निम्न समझा और निन्दा की है। लेकिन वास्तविकता से है कि संत होने के नाते उन्होंने निष्पक्ष होकर गुण - दोष का विवेचन किया है जिससे गुण ग्रहण और अवगुण का परित्याग हो सके।

तेहि के कछु गुन दोष बखाने।
संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।।

तुलसी की मानस एक प्रकार की गंगा है जो सबको पावन करती है। जिस प्रकार

गंगा की धारा टेढ़ी – मेढ़ी बहती है कभी अनेकों धाराओं में बँट जाती है और कभी घनघोर गर्जना करती है उसी प्रकार तुलसीदास जी ने लोकमंगल की कामना से नारी के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन मानस में किया है। तुलसीदास के विचारों और आदर्शों के अध्ययन में ये नही भूलना चाहिये कि वो तत्वदर्शी विद्वान होने के साथ ही साथ एक उच्चकोटि के महाकवि भी है। गोस्वामी जी कभी भी स्त्री के मातृरूप, कन्यारूप, पत्नीरूप के विरोधी नही रहे वे तो प्रमदारूप के विरोधी है। गोस्वामी जी ने नारी के विविध स्वभाव को लक्ष्य करके लिखा है कि 'पुरूष मनोहर निरखहिं नारी' और दूसरी ओर आदर्श स्शापित करते है कि

''सपनेहुं आन पुरूष जग नाहीं''।

नारी को तीन कोटि में बाँटा है उसी तरह पुरूष को भी नीति निर्देश दिया है ।
सर्वोत्तम स्त्री वो है जो सपने में भी पर को नही देखती है ।
और मध्यम वो है जो --

मध्यम परपति देखइ कैसे ,
भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ।

और निष्ट कौन है --
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई ,
सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ।

पुरूष को जो नीति निर्देश दिये उस पर भी दृष्टि डाल ली जाये ।
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी
जेहिं सपनेहुं परनारि न हेरी ।

जननी सम जानहिं पर नारी,
तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ।

रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ ,
मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ ।

सो परनारि लिलार गोसाईं ,
तजउ चउथि के चंद कि नाई ।

तुलसीदास जी ने इन चौपाइयों के माध्यम से स्त्री के सम्मान को सुरक्षित करने और मनुष्य की कुष्टि से बचने का उपाय माना है। इनमें लोक कल्याण की भावना छिपी है। गोस्वामी जी जिस काल में थे वो भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अवसान का युग था। चारों ओर भोग विलास और अर्थोपार्जन में ही लोग लगे थे। लोगों मे स्त्रैण भावना इतनी प्रबल थी कि सारी मर्यादाएँ टूट रही थीं। तपसी तुलसीदास जी ने उस लोभी, मूर्ख और कामुक समाज को रूप सौन्दर्य का पाठ पढ़ाने के बजाय सत्य मार्ग पर ले जाने का कार्य किया। अपनी विवाहिता को घर से निकाल कर परायी स्त्री को घर में बैठा कर लोग गर्वित हो रहे थे।

कुलवंत निकारहि नारि सती,
अरू आनहि चेरि निवेरि गती ।

तुलसीदास जी ने सीता का जो आदर्श प्रस्तुत किया वो सती शिरोमणि के आसन पर आसीन हुई। हिन्दू समाज के घर-घर में प्राण-प्राण मे सीता और राम बस गये। सीता की निर्मल और परम सुशील सुन्दरता और चरित्र का जो चित्रण किया वह परम सात्विक और अनुकरणीय है।

तेहि अवसर सीता तहँ आई।
गिरिजा पूजन जननि पठाई ।।
संग सखी सब सुभग सयानी ।
गावहिं गीत मनोहर बानी ।।

उसी पुष्प वाटिका में श्री राम का नाम सुनकर श्री सीता जी के मन में नारद जी के वचन याद आ गये और हृदय मे राम के प्रति प्रेम उमड़ने लगा।

सुमिरि सीय नारद बचन
उपजी प्रीति पुनीत

राम के दर्शन के लिये नेत्र अकुला जाते हैं चकित होकर सब ओर इस प्रकार देखती हैं जैसे कोई डरी हुई छोटी सी हिरणी हो। सीता जी का मुखचन्द्र देखकर रघुनाथ जी के नेत्र चकोर बन जाते हैं। सुन्दर कमलनयन स्थिर अपलक हो गये। सीता की शोभा तो सुन्दरता को भी और सुन्दर बनाने वाली है। मानो छवि के गृह मे दीप शिखा जल रही हो। उधर जनकनन्दिनी भी रघुवीर को अपलक निहार रही हैं जैसे चकोरी शरदकाल के चन्द्रमा को बेसुध निहारती है। लेकिन दूसरे ही पल सीता अपने मन को संयत करके श्री राम के चरणों में स्नेह रखते हुये लौट पड़ती हैं। फिरि अपनपऊ पितु बस जाने।

इसमें पीड़ा भी है और ये भी संदेश कि मानसिक इच्छाओं का दमन किये बगैर कोई महान नही हो सकता। उन्हे ये भी विश्वास था कि जगदम्बा उनकी वंदना स्वीकार करेंगीं और आशीर्वाद जरूर मिलेगा।

जेहि कर जेहि पर सत्य सनेहूँ ,
सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू।

सीता पिता को ही प्रधानता देती हैं क्योंकि उन्होंने ऐसा न किया तो उन्हे प्रेमिका की उपाधि तो मिल जायेगी लेकिन कन्या के धर्म से वो च्युत हो जायेंगी। इस त्याग का उन्हे प्रत्यक्ष फल मिला। यही है कन्या का सर्वश्रेष्ठ चरित्र चित्रण।

एक और दृष्टान्त पार्वती जी की बिदाई के समय का है जब माता मैना कहती हैं कि विधाता ने स्त्री जाति को क्यों पैदा किया, पराधीन को तो सपने में भी सुख की प्राप्ति नही होती है। प्रसंग ये है कि शिव के साथ पार्वती का विवाह हुआ है, पार्वती जी तो अत्यन्त प्रसन्न हैं लेकिन उनके विवाह से माता सुखी नही हैं। उनका मनोविज्ञान देखिये -

नारद के मैं काह बिगारा।
भवन मोर जिन्ह बसत उजारा।।

अस उपदेश उमहि जे दीन्हा ।
बौरे बरहि लागि तप कीन्हा ।।
सांचेहुँ उनके मोह न माया ।
उदासीन धनु धाम न जाया ।।
पर घर घालक लाज न भीरा।
बाँझ कि जान प्रसव कै पीरा ।।

तब पार्वती जी कहती हैं कि –
तुम्ह सन मिटहि कि विधि के अंका ।
मातु व्यर्थ जनि लेहु कलंका ।।
पुनः माता दुखी होकर कहती हैं –

कत बिधि सृजी नारि जग माही।।
पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं ।।

पार्वती निर्भीकता पूर्वक कहती हैं माँ जो हुआ वो विधाता की देन है तुम व्यर्थ में अपने पर कलंक मत लो। अगर आज के संदर्भ में देखा जाये तो तुलसीदास जी ने कितनी सहजता से स्त्री विमर्श को व्यक्त किया है ऐसा वर्णन अन्यत्र कहीं दुर्लभ है।

नारी के पत्नी रूप मे सीता का आदर्श रूप दिखता है। वह समस्त मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक शक्ति के साथ पति सेवा में संलग्न हो जाती है।

एकइ धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पति पद प्रेमा।।

ये कहने वाला और उपदेशक अनसूया जी पातिव्रत्य धर्म की पराकाष्ठा थीं। जब राम उनके आश्रम में आये तो वो राम के दर्शन के लिये नही जाती हैं क्योंकि उनके लिये तो राम उनके अत्रि ऋषि हैं। अनसूया जी कहती हैं –

बिनु श्रम नारि परम गति लहई।
पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई।।

सहज अपावनि नारि पतिसेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ। तुलसिका हरिहि प्रिय।।

प्रभु के मस्तक पर सुशोभित तुलसी इस कथन की सत्यता प्रमाणित कर रही है कि नारी अपने पातिव्रत्य मात्र से भगवान को इतनी प्रिय हो सकती है।

चित्रकूट की मंदाकिनी इस बात की साक्षी है कि जो कार्य गंगावतरण पुरूष अनेक पीढ़ियों में कर सका वही कार्य पतिव्रता ने अपने प्रभाव से पति की सेवा के लिये एक क्षण में कर दिखाया।

सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनी।
जो सब पातक पोतक डाकिनी।।
वेद पुरान समस्त बखानी।
अत्रि प्रिया निज तप बल आनी।।

वन गमन के समय श्री राम जी ने सीता को यही समझाया कि सीता को घर में रह कर सास ससुर की सेवा करनी चाहिये यही उचित है क्योंकि वन का जीवन अत्यन्त दुर्गम और कंटक पूर्ण है। लेकिन सीता जी के तर्क के आगे राम जी को झुकना पड़ा।

प्राननाथ करूणायतन सुंदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान।।

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
तुम्हहि उचित तम मो कहूँ भोगू।।
ऐसे उच्चकोटि के भाव सीता जी के हृदय में थे।

जब भरत जी चित्रकूट आये तो साथ में जनकजी और माता सुनयना भी साथ आये थे। सीता जी की पति परायणता देखकर ज्ञानी पिता जनकजी ने सीता की तुलना गंगा से की –

तापस वेष जनक सिय देखी।
भयउ प्रेमु परितोषु विसैषी।।
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।
सुजस धावल जगु कह सब कोऊ।।
जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी।
गवनु कीन्ह विधि अंड करोरी।।

धन्य है ऐसी कन्या जिसके पिता के मुख के ऐसे उद्‌गार हो। माता सुनयना के पास सीता बैठी थीं और रात्रि बढ़ती जा रही थी उन्हे संकोच हो रहा था कि कैसे कहें कि जाना है–

''इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।''
माता पुत्री की मर्यादा समझती हैं और सीता के शील पर प्रसन्न होती हैं।
अशोक वाटिका में रावण सीता को कितना प्रलोभन देता है –

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी ।
मंदोदरी आदि सब रानी ।।
तव अनुचरीं करउँ पन मोरा ।
एक बार बिलोकु मम ओरा ।।
सीता जी का आत्मबल देखते ही बनता है ।
तृन धरि ओट कहति बैदेही
सुमिरि अवध पति परम सनेही ।।

हनुमान जी जब सीता माता से पहली बार अशोक वाटिका में मिलते हैं तो सीता का अडिग भाव इस प्रकार दिखता है –

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ।।

रावण की मृत्यु के बाद राम ने सीता की विशुद्धि को सामान्य जनता के सामने प्रकट करने के लिये अनेक कटुवचन कहे। भगवती सीता के कथन बहुत मार्मिक थे। ''मनुष्य उसी वस्तु के लिये उत्तरदायी होता है, जिस पर उसका अधिकार होता है। मै अपने हृदय की स्वामिनी हूँ। उसे

मैंने अपने वश में रखा है। वह सदा आपके चिन्तन में निरत रहा है। अंगों पर मेरा काबू नही है। वे पराधीन ठहरे। यदि रावण ने बलात्कार से उनका स्पर्श कर लिया तो इसमें मेरा अपराध ही क्या है?

नारी का निर्बल अंश है उसका नारीत्व और सबल अंश है पातिव्रत्य।

तुलसीदास जी जब भी कोई बात कहते हैं तो ये देखना बहुत जरूरी है कि वह किस संदर्भ में कह रहे हैं और कौन सा पात्र इसे कह रहा है।

अवगुण आठ सदा उर रहहीं ।
नारि सुभाव सत्य सब कहहीं ।।

ये बात मानस का खलनायक रावण कहता है जो अपनी पत्नी मंदोदरी के सुझाव को नही मानता और मृत्यु को प्राप्त करता है। इसी प्रकार बालि भी अपनी पत्नी तारा की बात नही मानता और मृत्यु से पूर्व राम से पूछता है कि मुझे क्यों मारा तो राम कहते हैं –

अनुज वधू भगिनी सुत नारी
सुन सठ कन्या सम ये चारी ।।
इनहि कुष्ट विलोकहि जोई ।
ताहि बधो कछु पाप न होई ।।

मतंग ऋषि से आशीर्वाद प्राप्त कर शबरी प्रतिदिन कई मीलों तक दण्डकारण्य को साफ करती थी। और राम प्रभु के आने की बाट जोहती थी। जब राम उसकी कुटिया में पधारे तो वह आत्मविभोर हो गयी।

सबरी देखि राम गृहँ आए।
मुनि के बचन समुझि जिएँ भाए।
सरसिज लोचन बाहु बिसाला।
जटा मुकुट सिर उर बनमाला।।
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई।
सबरी परी चरण लपटाई।।
प्रेम मगन मुख बचन न आवा।
पुनि-पुनि पद सरोज सिर नावा।।

शबरी की वाणी अवरूद्ध थी वो चरणों को पकड़ कर अनन्त सौन्दर्यमय भगवान की ओर टकटकी लगाये देखने और आँसू बहाने के कुछ कप ही नही पा रही थी। वह अपने वश में नही थी। जब थोड़ा संयत हुई तो मीठे-मीठे बेर ले आई और बड़े चाव से खिलाने लगी। प्रभु भी इतने प्रेम से खा रहे थे जैसे प्रेममयी जन्मदायिनी माता कौसल्या जी भोजन करा रही हों।

अपनी अभीप्सा पूर्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्नता से हाथ जोड़कर शबरी ने प्रार्थना की –

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी ।
अधम जाति मैं जड़मति नारी ।।
अधमते अधम अधम अति नारी ।
तिन्ह महँ मैं मति मंद अघारी ।।

भगवान ने उत्तर दिया --
सावधान सुनु भामिनी माता ।
मानौं एक भगति कर नाता ।।

फिर प्रभु ने उसके सामने नवधा भक्ति का निरूपण किया शबरी धन्य हो गयी। उसकी सब आकांक्षाएँ पूर्ण हो गयीं थीं उसने अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया अद्वितीय थी शबरी की भक्ति। सबसे अधिक इसी बात को लेकर तुलसीदास जी पर आक्षेप लगाया जाता है कि -

ढोल, गँवार, शूद्र,पशु, नारी ।
सकल ताड़ना के अधिकारी ।।

मुख्य बात ये है कि ये कह कौन रहा है? राम समुद्र की बात सुनकर केवल मुस्कुरा देते हैं। और कहते हैं कि भई सेना उतरने का उपाय बताओ। यहाँ प्रभु शबरी की तरह उपदेश नही देते हैं। जहाँ शबरी एक भक्त और आदर्श नारी थी तो समुद्र अहंकारी और प्रतिक्रियावादी है। सागर शठ है, जड़ है और भयभीत। जिस प्रकार के दोष उसमें स्वयं है वही दोष वो सब में मान रहा है। उसने अग्नि जल आकाश वायु और पृथ्वी के जड़ कहा। और स्वयं को जड़ कहता है तो ये भी कहता है कि इसमें मेरा क्या दोष? आपने ही तो हमें उत्पन्न किया है। वह सारे दोष राम जी पर भी थोप देता है इसीलिये प्रभु उससे वाद विवाद करना और उसे समझाना प्रासंगिक नही समझते और मुस्कुरा देते हैं। उनका लक्ष्य तो सागर पार करना था। वह उपदेश का अधिकारी नही था।

जब लक्ष्मण को शक्ति लग जाती है तो उस प्रसंग में राम भी ऐसा कहते हैं -

जथा पंख बिनु खग अति दीना ।
मनि बिनु फन करिबर कर हीना ।।
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही ।
जो जड़ दैव जियावइ मोही ।।
जैहहुँ अवध कवन मुँह लाई ।
नारि हेतु प्रिय बंधु गँवाई ।।
बरू अपजसु सहतेउ जग माहीं ।
नारि हानि विशेष क्षति नाहीं ।।

यहाँ प्रसंग ये है कि लक्ष्मण को शक्ति लगी है। संजीवनी लेने हनुमान जी गये हैं। संजीवनी आयी नही है और लक्ष्मण की मृत्यु के पूरे आसार हैं, हनुमान को विलम्ब हो रहा है। ऐसी दशा में ये कहना उचित ही है कि बिना भ्राता के सीता को कैद से छुड़ा पाना सम्भव नही है। भाई का बचना ज्यादा जरूरी है।

दूसरी ओर सुमित्र का गौरव देखने लायक है क्योंकि हनुमान जब पर्वत लेकर अयोध्या के ऊपर से गुजरते हैं तो भरत के बाण से आहत हो कर गिर जाते हैं अयोध्या में समाचार मिलता है कि राम के लिये युद्ध करते हुए लक्ष्मण गिर गये हैं तो सुमित्र तुरंत शत्रुघ्न को आज्ञा देती हैं कि

''तात जाहु कपि संग ।''
रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं ।

तुरंत आज्ञा का पालन होता है, वो तो वसिष्ठ जी ने न रोका होता तो माता अपने पुत्र को लंका भेज देती। ये सुमित्र का राम के प्रति स्नेह था।

इसके पहले भी जब वनगमन के समय लखन लाल जी माता से आज्ञा माँगने आते हैं तो सुमित्र के हृदय की विशालता दिखती है।

तात तुम्हारि मातु वैदेही ।
पिता रामु सब भाँति सनेही ।।
अवध तहाँ जहँ राम निवासू।
तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाही ।।

पुत्रवती जुबती जग सोई ।
रघुपति भगतु जासु सुत होई ।।
पुत्रवती जुबती कह कर नारी जीवन की सफलता भी सुमित्र ने बताई है।

इसी प्रकार जब चित्रकूट में सुमित्रा जी की नीतिज्ञता का परिचय मिलता है। सुनयना जी कैकेयी पर बहुत क्रोधित होती हैं। कौसल्या जी समझा रही हैं लेकिन उनका चित्त किसी तरह शांत नही होता है। ''सुनिउ सुधा देखिअ गरल'' के समान ऐसी कटूक्तियां सुनाती हैं तब सुमित्रा जी ने ''देवि जाम जुग जामिनी बीती'' ये कहकर प्रसंग को समाप्त कर दिया।

तभी तो गोस्वामी जी कहते हैं –
प्रात सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेह ।
तनय लखन रिपुदमन सम पावहिं पति पद प्रेम ।।

कैकेयी राजा दशरथ की सबसे छोटी सबसे प्रिय रानी थी। राम भी उन्हें बहुत प्रिय थे और राम को माता कैकेयी। राम के युवराज बनने की खबर सुनते ही खुशी से उन्होंने मन्थरा जो उनकी दासी थी तुरंत कण्ठहार दे दिया। मन्थरा जब कैकेयी को उकसाती है तो वो उसको डाँटती हैं –

पुनि अस कबहुँ कहसि घर फोरी ।
तौ धरि जीभ कढावउँ तोरी ।।

लेकिन दुष्टों के अमंगल वचन का पवित्र हृदयों पर कितना दुष्प्रभाव पड़ता है ये गोस्वामी जी ने बताने का प्रयास किया है।

कैकेयी कोप भवन में चली जाती है और दशरथ से अपने दो वचन पूरे करने को कहती है। राम को वनवास चौदह वर्ष का और भरत को राजगद्दी। राजा दशरथ बहुत मनाते हैं लेकिन वह हठ करती है। उसकी कठोरता की कोई सीमा नही रह जाती।

आदेश देती है कि –
प्रात होत मुनिबेस धरि जौ न राम बन जाहि।
मोर मरन राउर अजस नृप समुझउ मन माहि।।

राम के वियोग में राजा दशरथ प्राण त्याग देते हैं। एक दिन जिसका सबसे अधिक मान था, जिसकी पा पाने को सब लालायित रहते थे आज कैकेयी को सब राक्षसी, पतिघातिनी और क्या कुछ कह रहे हैं। भरत ने माँ से मुख मोड़ लिया और सेवक तक उनसे विमुख हो गये। जब भरत

चित्रकूट जाने को तैयार होते हैं तो सुमित्रा के आश्वासन पर कैकेयी भी राम से मिलने जाती है। राम उन्हे निरपराध घोषित करते हैं राम कहते हैं कि आपने देवकार्य के लिये सम्पूर्ण संसार की निन्दा, सदा के लिये अपयश अपने सिर पर लिया है अतः मैं आपसे प्रसन्न हूँ। जब वन से लौटे तो सबसे पहले राम कैकेयी से ही मिले ये राम के आदर्श की पराकाष्ठा थी। क्योंकि कैकेयी ने कलंक का टीका लगाकर राम काज किया था।

माता कौसल्या की गोद को राम ने विश्व वंदनीय बनाया था उनकी गोद में राम का दिन प्रतिदिन पलना उनके लिये परमानन्द था। राम के वनगमन का समाचार माता के लिये वज्रपात से कम न था लेकिन उन्होंने ये कह कर आज्ञा दी कि –

जौं केवल पितु आयसु ताता ।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता ।।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना
तौ कानन सत अवध समाना ।।

अपने हृदय को वज्र बनाकर पुत्र को आज्ञा दे दी। ''मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरूणा'' के आदेश को पुत्र के लिये रक्षित किया। महाराज दशरथ के देहत्याग के बाद कौसल्या सती होना चाहती थीं। लेकिन भरत के प्रेम के कारण उन्होंने ऐसा नही किया। ''गूढ़ सनेह भरत मन माही।'' श्री राम जब चौदह वर्ष का वनवास पूरा करके वापस आये तो माता बार-बार राम के कोमल अंगों पर हाथ फिराती और देखती कि कहीं कोई आघात का चिह्न तो नही है। उनके लिये तो राम सदा कोमल शिशु ही रहेंगे।

बंदौ कौसल्या दिसी प्राची ।
कीरति जासु सकल जग माची ।।

रामचरित मानस प्रबंध महाकाव्य है, इसलिए किसी स्वतंत्र एक अर्धाली या चौपाई के माध्यम से यह निष्कर्ष निकालना कि तुलसीदास नारी जाति के प्रति तटस्थ नहीं हैं यह तुलसीदास का पूर्वाग्रह भाव नहीं है। किंतु तुलसी को नारी निंदक कहना य तुलसीदास के प्रति पूर्वाग्रह को दर्शाता है। प्रसंग काटकर देखने से प्रबंध काव्य में अर्थ-विश्लेषण के क्रम में दोष आ सकता है। आज विमर्शों का दौर चल रहा है। जैसे-दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, स्त्री-विमर्श। किंतु दुःख तब होता है जब समाज में असमानता, असहिष्णुता-जैसे भाव आज भी मात्रात्मक रूप में विद्यमान हैं। कानून तो हर समस्या के समाधान के लिये बने हैं लेकिन जैसी मानवीय सोच होनी चाहिये और जो आदर्श रामचरितमानस में दर्शाये गयें हैं उनका अभाव हैं।

डॉ. नीलिमा मिश्रा, इलाहाबाद, मो. : 8127713641

✧ ✧ ✧

दूसरे देश में

मुल लेखक : अर्नेस्ट हेमिंग्वे

अनुवाद : सुशांत सुप्रिय

मेरा घुटना नहीं मुड़ता था, और पैर घुटने से टखने तक बिना पिण्डली के सीधा गिरता था, और मशीन घुटने को मोड़ने और ऐसे चलाने के लिए थी जैसे तिपहिया साइकिल चलानी हो। पर घुटना अब तक नहीं मुड़ता था और इसके बजाय मशीन जब मोड़ने वाले भाग की ओर आती थी तो झटका खाती थी। डॉक्टर ने कहा -- '' वह सब ठीक हो जाएगा। आप एक भाग्यशाली युवक हैं। आप दोबारा विजेता की तरह फुटबॉल खेलेंगे।''

शरत् ऋतु में भी वहाँ युद्ध चल रहा था, पर हम वहाँ फिर नहीं गए। शरत् ऋतु में मिलान बेहद ठण्डा था और अँधेरा बहुत जल्दी घिर आया था। फिर बिजली के बल्ब जल गए और सड़कों के किनारे की खिड़कियों में देखना सुखद था। बहुत सारा शिकार खिड़कियों के बाहर लटका था और लोमड़ियों की खाल बर्फ के चूरे से भर गई थी और हवा उनकी पूँछों को हिला रही थी। अकड़े हुए, भारी और खणली हिरण लटके हुए थे और छोटी चिड़ियाँ हवा में उड़ रही थीं और हवा उनके पंखों को उलट रही थी। वह बेहद ठण्डी शरत् ऋतु थी और हवा पहाड़ों से उतर कर नीचे आ रही थी।

हम सभी हर दोपहर अस्पताल में होते थे और गोधूलि के समय शहर के बीच से अस्पताल तक पैदल जाने के कई रास्ते थे। उनमें से दो रास्ते नहर के बगल से हो कर जाते थे, पर वे लम्बे थे। हालाँकि अस्पताल में घुसने के लिए आप हमेशा नहर के ऊपर बने एक पुल को पार करते थे। तीन पुलों में से एक को चुनना होता था। उनमें से एक पर एक औरत भुने हुए चेस्टनट बेचती थी। उसके कोयले की आग के सामने खड़ा होना गरमी देता था और बाद में आपकी जेब में चेस्टनट गरम रहते थे।

अस्पताल बहुत पुराना और बहुत ही सुंदर था और आप एक फाटक से घुसते और और चल कर एक आँगन पार करते और दूसरे फाटक से दूसरी ओर बाहर निकल जाते। प्रायः आँगन से शव-यात्राएँ शुरू हो रही होती थीं।

पुराने अस्पताल के पार ईंट के बने नए मंडप थे और वहाँ हम हर दोपहर मिलते थे। हम सभी बेहद शिष्ट थे और जो भी मामला होता उसमें दिलचस्पी लेते थे और उन मशीनों में भी बैठते थे जिन्होंने इतना ज़्यादा अंतर ला देना था।

डॉक्टर उस मशीन के पास आया जहाँ मैं बैठा था और बोला -- ''युद्ध से पहले आप क्या करना सबसे अधिक पसंद करते थे? क्या आप कोई खेल खेलते थे?''

मैंने कहा -- ''हाँ, फुटबॉल।''

''बहुत अच्छा,'' वह बोला। ''आप दोबारा फुटबॉल खेलने के लायक हो जाएँगे, पहले से भी बेहतर।''

मेरा घुटना नहीं मुड़ता था, और पैर घुटने से टखने तक बिना पिण्डली के सीधा गिरता था, और मशीन घुटने को मोड़ने और ऐसे चलाने के लिए थी जैसे तिपहिया साइकिल चलानी हो। पर घुटना अब तक नहीं मुड़ता था और इसके बजाय मशीन जब मोड़ने वाले भाग की ओर आती थी तो झटका खाती थी। डॉक्टर ने कहा -- '' वह सब ठीक हो जाएगा। आप एक भाग्यशाली युवक हैं। आप दोबारा विजेता की तरह फुटबॉल खेलेंगे।''

दूसरे मशीन में एक मेजर था जिसका हाथ एक बच्चे की तरह छोटा था। उसका हाथ चमड़े के दो पट्टों के बीच था जो ऊपर-नीचे उछलते थे और उसकी सख्त उँगलियों को थपथपाते थे। जब डॉक्टर ने उसका हाथ जाँचा तो उसने मुझे आँख मारी और कहा -- ''और क्या मैं भी फुटबॉल खेलूँगा, कप्तान-डॉक्टर?'' वह एक महान् पटेबाज रहा था, और युद्ध से पहले वह इटली का सबसे महान् पटेबाज था।

डॉक्टर पीछे के कमरे में स्थित अपने कार्यालय में गया और वहाँ से एक तस्वीर ले आया। उसमें एक हाथ दिखाया गया था जो मशीनी इलाज लेने से पहले लगभग मेजर के हाथ जितना मुरझाया और छोटा था और बाद में थोड़ा बड़ा था। मेजर ने तस्वीर अपने अच्छे हाथ से उठाई और उसे बड़े ध्यान से देखा। ''कोई जख्म्?'' उसने पूछा।

''एक औद्योगिक दुर्घटना,'' डॉक्टर ने कहा।

''काफी दिलचस्प है, काफी दिलचस्प है,'' मेजर बोला और उसे डॉक्टर को वापस दे दिया। ''आपको विश्वास है?''

''नहीं,'' मेजर ने कहा।

मेरी ही उम्र के तीन और लड़के थे जो रोज वहाँ आते थे। वे तीनो ही मिलान से थे और उनमें से एक को वकील बनना था, एक को चित्रकार बनना था और एक ने सैनिक बनने का इरादा किया था। जब हम मशीनों से छुट्टी पा लेते तो कभी-कभार हम कोवा कॉफी-हाउस तक साथ-साथ लौटते जो कि स्केला के बगल में था। हम साम्यवादी बस्ती के बीच से हो कर यह छोटी दूरी तय करते थे। हम चारो इकठ्ठे रहते थे। वहाँ के लोग हमसे नफरत करते थे क्योंकि हम

अफसर थे और जब हम गुजर रहे होते तो किसी शराबखाने से कोई हमें गाली दे देता। एक और लड़का जो कभी-कभी हमारे साथ पैदल आता और हमारी संख्या पाँच कर देता, अपने चेहरे पर रेशम का काला रुमाल बाँधता था क्योंकि उसकी कोई नाक नहीं थी और उसके चेहरे का पुनर्निर्माण किया जाना था। वह सैनिक अकादमी से सीधा मोर्चे पर गया था और पहली बार मोर्चे पर जाने के एक घंटे के भीतर ही घायल हो गया था।

उन्होंने उसके चेहरे को पुनर्निर्मित कर दिया, लेकिन वह एक बेहद प्राचीन परिवार से आता था और वे उसकी नाक को कभी ठीक-ठीक नहीं सुधार सके। वह दक्षिणी अमेरिका चला गया और एक बैंक में काम करने लगा। पर यह बहुत समय पहले की बात थी और तब हममें से कोई नहीं जानता था कि बाद में क्या होने वाला था। तब हम केवल यही जानते थे कि युद्ध हमेशा रहने वाला था पर हम अब वहाँ दोबारा नहीं जाने वाले थे।

शुरू-शुरू में लड़के मेरे तमगों के बारे में बेहद शिष्ट थे और मुझसे पूछते थे कि मैंने उन्हें पाने के लिए क्या किया था। मैंने उन्हें अपने कागज दिखाए, जो बड़ी खूबसूरत भाषा में लिखे गए थे, पर जो विशेषणों को हटा देने के बाद वास्तव में यह कहते थे कि मुझे तमगे इसलिए दिए गए थे क्योंकि मैं एक अमेरिकी था। उसके बाद उनका व्यवहार थोड़ा बदल गया, हालाँकि बाहरी व्यक्तियों के विरुद्ध मैं उनका मित्र था। जब उन्होंने प्रशंसात्मक उल्लेखों को पढ़ा उस के बाद मैं एक मित्र तो रहा पर मैं दरअसल उनमें से एक कतई नहीं था, क्योंकि उनके साथ दूसरी बात हुई थी।

हम सभी के पास एक जैसे तमगे थे, उस लड़के को छोड़ कर जो अपने चेहरे पर काला रेशमी रुमाल बाँधता था और वह मोर्चे पर तमगे ले सकने जितनी देर नहीं रहा था। निस्तेज चेहरे वाला लम्बा लड़का, जिसे वकणील बनना था, आर्दिती का लेफ्टिनेंट रह चुका था और उसके पास वैसे तीन तमगे थे जैसा हम में से प्रत्येक के पास केवल एक था। वह मृत्यु के साथ एक बेहद लम्बे अरसे तक रहा था और थोड़ा निर्लिप्त था। हम सभी थोड़े निर्लिप्त थे और ऐसा कुछ नहीं था जो हमें एक साथ रखे हुए था, सिवाय इसके कि हम प्रत्येक दोपहर अस्पताल में मिलते थे। हालाँकि, जब हम शहर के निष्ठुर इलाके के बीच से अँधेरे में कोवा की ओर चल रहे होते, और शराबखानों से गाने-बजाने की आवाजें आ रही होतीं और कभी-कभी सड़क पर तब चलना पड़ता जब पुरुषों और महिलाओं की भीड़ फुटपाथ पर ठसाठस भर जाती तो हमें आगे निकलने के लिए उन्हें धकेलना पड़ता। तब हम खुद को किसी ऐसी चीज के कारण आपस में जुड़ा महसूस करते जो उस दिन घटी होती और जिसे वे लोग नहीं समझते थे जो हमसे नफरत करते थे।

हम सब खुद कोवा के बारे में जानते थे जहाँ पर माहौल शानदार और गरम था और ज़्यादा चमकीली रोशनी नहीं थी और मेजों पर हमेशा लड़कियाँ होती थीं और दीवार पर बने रैक में सचित्र अखबार होते थे। कोवा की लड़कियाँ बेहद देशभक्त थीं और मैंने पाया कि इटली में कॉफी-हाउस में काम करने वाली लड़कियाँ सबसे ज़्यादा देशभक्त थीं - और मैं मानता हूँ कि वे अब भी देशभक्त हैं।

शुरू-शुरू में लड़के मेरे तमगों के बारे में बेहद शिष्ट थे और मुझसे पूछते थे कि मैंने उन्हें पाने के लिए क्या किया था। मैंने उन्हें अपने कागज दिखाए, जो बड़ी खूबसूरत भाषा में लिखे गए थे, पर जो विशेषणों को हटा देने के बाद वास्तव में यह कहते थे कि मुझे तमगे इसलिए दिए गए थे क्योंकि मैं एक अमेरिकी था। उसके बाद उनका व्यवहार थोड़ा बदल गया, हालाँकि बाहरी व्यक्तियों के विरुद्ध मैं उनका मित्र था। जब उन्होंने प्रशंसात्मक उल्लेखों को पढ़ा उस के बाद मैं एक मित्र तो रहा पर मैं दरअसल उनमें से एक कतई नहीं था, क्योंकि उनके साथ दूसरी बात हुई थी और उन्होंने अपने तमगे पाने के लिए काफी अलग तरह के काम किए थे। मैं घायल हुआ था, यह सच था य लेकिन हम सभी जानते थे कि घायल होना आखिरकार एक दुर्घटना थी। हालाँकि मैं फीतों के लिए कभी शर्मिंदा नहीं था और कभी-कभार कॉकटेल पार्टी के बाद मैं कल्पना करता कि मैंने भी वे सभी काम किए थे जो उन्होंने अपने तमगे लेने के लिए किए थे य पर रात में सर्द हवाओं के साथ खणली सड़कों पर चल कर जब मैं घर आ रहा होता और सभी दुकानें बंद होतीं और मैं सड़क पर लगी बत्तियों के करीब रहने की कोशिश कर रहा होता, तब मैं जानता था कि मैं ऐसे काम कभी नहीं कर पाता। मैं मरने से बेहद डरता था और अक्सर रात में बिस्तर पर अकेला पड़ा रहता था, मरने से डरते हुए और ताज्जुब करते हुए कि जब मैं मोर्चे पर दोबारा गया तो कैसा हूँगा।

तमगे वाले वे तीनो शिकारी बाज-से थे और मैं बाज नहीं था, हालाँकि मैं उन्हें बाज लग सकता था जिन्होंने कभी शिकार नहीं किया था। वे तीनो बेहतर जानते थे इसलिए हम अलग हो गए। पर मैं उस लड़के का अच्छा मित्र बना रहा जो अपने पहले दिन ही मोर्चे पर घायल हो गया था क्योंकि अब वह कभी नहीं जान सकता था कि वह कैसा बन जाता। मैं उसे चाहता था क्योंकि मेरा मानना था कि शायद वह बाज नहीं बनता।

मेजर, जो महान् पटेबाज रहा था, वीरता में विश्वास नहीं रखता था और जब हम मशीनों में बैठे होते तो वह अपना काफी समय मेरा व्याकरण ठीक करने में गुजारता था। मैं जैसी इतालवी बोलता था उसके लिए उसने मेरी प्रशंसा की थी और हम आपस में काफी आसानी से बातें करते थे। एक दिन मैंने कहा था कि मुझे इतालवी इतनी सरल भाषा लगती थी कि मैं उस में ज़्यादा रुचि नहीं ले पाता था। सब कुछ कहने में बेहद आसान था। ''ओ, वाकई,'' मेजर ने कहा। ''तो फिर तुम व्याकरण के इस्तेमाल में हाथ क्यों नहीं लगाते?'' अत: हमने व्याकरण के इस्तेमाल में हाथ डाला और जल्दी ही इतालवी इतनी कठिन भाषा हो गई कि मैं तब तक उससे बात करने से डरता था जब तक कि मेरे दिमाग में व्याकरण की तसवीर साफ नहीं आ जाती। मेजर काफी नियमित रूप से

अस्पताल आता था। मुझे नहीं लगता कि वह एक दिन भी चूका होगा, हालाँकि मुझे पक्का यकीन है कि वह मशीनों में विश्वास नहीं रखता था। एक समय था जब हम में से किसी को भी मशीनों पर भरोसा नहीं था और एक दिन मेजर ने कहा था कि यह सब मूर्खतापूर्ण था। तब मशीनें नई थीं और हम ने ही उनकी उपयोगिता को सिद्ध करना था। यह एक मूर्खतापूर्ण विचार था, मेजर ने कहा था, ''एक परिकल्पना, किसी दूसरी की तरह।'' मैंने अपना व्याकरण नहीं सीखा था और उसने कहा कि कि मैं एक न सुधरने वाला मूर्ख और कलंक था और वह स्वयं भी एक मूर्ख था कि उसने मेरे लिए परेशानी उठाई। वह एक छोटे कंद का व्यक्ति था और वह अपना दायाँ हाथ मशीन में घुसा कर अपनी कुर्सी पर सीधा बैठ जाता और सीधा आगे दीवार को देखता जबकि पट्टे बीच में पड़ी उसकी उँगलियों पर ऊपर-नीचे प्रहार करते।

''यदि युद्ध समाप्त हो गया तो तुम क्या करोगे?''

''मैं अमेरिका चला जाऊँगा।''

''क्या तुम शादी-शुदा हो?''

''नहीं, पर मुझे ऐसा होने की उम्मीद है।''

''तुम बहुत बड़े मूर्ख हो,'' उसने कहा। वह बहुत नाराज लगा। ''आदमी को कभी शादी नहीं करनी चाहिए।''

''क्यों श्री मैगियोर।''

''मुझे 'श्री मैगियोर' मत कहो।''

''आदमी को कभी शादी क्यों नहीं करनी चाहिए?''

''वह शादी नहीं कर सकता। वह शादी नहीं कर सकता, ''उसने गुस्से से कहा।'' यदि उसे सब कुछ खोना है तो उसे खुद को सब कुछ खो देने की स्थिति में नहीं लाना चाहिए। उसे खुद को खोने की स्थिति में कतई नहीं लाना चाहिए। उसे वे चीजें ढूँढ़नी चाहिए जो वह नहीं खो सकता।''

वह बहुत गुस्से में था, कड़वाहट से भर कर बोल रहा था और बोलते समय सीधा आगे देख रहा था।

''पर यह क्यों जरूरी है कि वह उन्हें खो ही दे?''

''वह उन्हें खो देगा,'' मेजर ने कहा। वह दीवार को देख रहा था। फिर उसने नीचे मशीन की ओर देखा और झटके से अपना छोटा-सा हाथ पट्टों के बीच से निकाल लिया और उसे अपनी जाँघ पर जोर से दे मारा। ''वह उन्हें खो देगा, ''वह लगभग चिल्लाया।'' मुझसे बहस मत करो! ''फिर उसने परिचारक को आवाज दी जो मशीनों को चलाता था।'' आओ और इस नारकीय चीज को बंद करो।''

वह हल्की चिकित्सा और मालिश के लिए वापस दूसरे कमरे में चला गया। फिर मैंने उसे डॉक्टर से पूछते सुना कि क्या वह उसका टेलीफोन इस्तेमाल कर सकता है और फिर उसने दरवाजा

बंद कर दिया। जब वह वापस कमरे में आया तो मैं दूसरी मशीन में बैठा था। उसने अपना लबादा पहना हुआ था और टोपी लगा ली थी और वह सीधा मेरी मशीन की ओर आया और मेरे कंधे पर अपनी बाँह रख दी।

''मुझे बेहद खेद है,'' उसने कहा, और अपने अच्छे हाथ से मुझे कंधे पर थपथपाया। ''मेरा इरादा अभद्र होने का नहीं था। मेरी पत्नी की मृत्यु हाल ही में हुई है। तुम्हें मुझे माफ कर देना चाहिए।''

''ओ-'' मैंने उसके लिए व्यथित हो कर कहा।'' मुझे भी बेहद खेद है।''
वह अपने निचले होठ काटता हुआ वहीं खड़ा रहा। ''यह बहुत कठिन है,''
उसने कहा। ''मैं इसे नहीं सह सकता।''

वह सीधा मुझसे आगे और खिड़की से बाहर देखने लगा। फिर उसने रोना शुरू कर दिया। ''मैं इसे सहने में बिलकुल असमर्थ हूँ,'' उसने कहा और उसका गला रुँध गया। और तब रोते हुए, अपने उठे हुए सिर से शून्य में देखते हुए, खुद को सीधा और सैनिक-सा दृढ़ बनाते हुए, दोनो गालों पर आँसू लिए हुए और अपने होठों को काटते हुए वह मशीनों से आगे निकला और दरवाजे से बाहर चला गया।

डॉक्टर ने मुझे बताया कि मेजर की पत्नी, जो युवा थी और जिससे उसने तब तक शादी नहीं की थी जब तक वह निश्चित रूप से युद्ध के लिए असमर्थ नहीं ठहरा दिया गया था, निमोनिया से मरी थी। वह केवल कुछ दिनों तक ही बीमार रही थी।

किसी को उसकी मृत्यु की आशंका नहीं थी। मेजर तीन दिनों तक अस्पताल नहीं आया। जब वह वापस आया तो दीवार पर चारो ओर मशीनों द्वारा ठीक कर दिए जाने से पहले और बाद की हर तरह के जख़्मों की "रेम की गई बड़ी-बड़ी तस्वीरें लटकी थीं। जो मशीन मेजर इस्तेमाल करता था उसके सामने उसके जैसे हाथों की तीन तस्वीरें थीं जिन्हें पूरी तरह से ठीक कर दिया गया था। मैं नहीं जानता, डॉक्टर उन्हें कहाँ से लाया। मैं हमेशा समझता था कि मशीनों का इस्तेमाल करने वाले हम ही पहले लोग थे। तस्वीरों से मेजर को कोई ज्यादा अंतर नहीं पड़ा क्योंकि वह केवल खिड़की से बाहर देखता रहता था।

सुशांत सुप्रिय, ए–5001, गौड़ ग्रीन सिटी, वैभव खंड, इंदिरापुरम, गाज़ियाबाद–201014 (उ0प्र0)
मो. : 8512070086, ई–मेल : sushant1968@gmail.com

✧ ✧ ✧

मिसफिट

सुशांत सुप्रिय

बचपन में माँ ने सिखाया था- बेटा, झूठ बोलना बुरी बात होती है। पर सारी दुनिया धड़ल्ले से झूठ बोलती थी और ऐश करती थी। पिताजी कहते थे- रिश्वत लेने और देने वाले, दोनों ही अपनी नजरों में गिर जाते हैं। पर यहाँ दोनों मजे में थे। स्कूल में टीचर कहते थे- शराब आदमी का पतन करती है। पर यहाँ दारू पीने और पिलाने वाले, दोनों का ही उत्थान होता था। पिताजी कहते थे - दफ्तर में चुगली-निंदा से दूर रहना, बेटा। पर यहाँ चुगली - निंदा समूचे दफ्तर का टॉनिक थी। दादाजी कहते थे- मेहनती और ईमानदार आदमी का भगवान होता है।

उसका सिर तेज दर्द से फटा जा रहा था। उसने पटरी से कान लगा कर रेलगाड़ी की आवाज सुननी चाही। कहीं कुछ नहीं था। उसने जब-जब जो-जो चाहा, उसे नहीं मिला। फिर आज उसकी इच्छा कैसे पूरी हो सकती थी। पटरी पर लेटे-लेटे उसने कलाई-घड़ी देखी। आधा घंटा ऊपर हो चुका था पर इंटरसिटी एक्सप्रेस का कोई अता-पता नहीं था। इंटरसिटी एक्सप्रेस न सही, कोई पैसेंजर गाड़ी ही सही। कोई मालगाड़ी ही सही। मरने वाले को इससे क्या लेना-देना कि वह किस गाड़ी के नीचे कट कर मरेगा। उसके सिर के भीतर कोई हथौड़े चला रहा था। ट्रेन उसे क्या मारेगी, यह सिर-दर्द ही उसकी जान ले लेगा - उसने सोचा। शोर भरी गली में एक लंबे सिर-दर्द का नाम जिंदगी है। इस ख्याल से ही उसके मुँह में एक कसैला स्वाद भर गया। मरने के समय मैं भी स्साला फिलॉस्फर हो गया हूँ - सोचकर वह पटरी पर लेटे-लेटे ही मुस्कराया। उसका हाथ उसके पतलून की बाईं जेब में गया। एक अंतिम सिगरेट सुलगा लूँ। हाथ विल्स का पैकेट लिए बाहर आया पर पैकेट खणली था। दफ्तर से चलने से पहले ही उसने पैकेट की अंति सिगरेट पी ली थी-उसे याद आया। उसके होठों पर गाली आते-आते रह गई।

आज सुबह से ही दिन जैसे उसका बैरी हो गया था। सुबह पहले पत्नी से खट-पट हुई। फिर किसी बात पर उसने बेटे को पीट दिया। दफ्तर के लिए निकला तो बस छूट गई। किसी तरह दफ्तर पहुँचा तो देर से आने पर

बॉस ने मेमो दे दिया। पे-स्लिप आई तो उसने पाया कि आधा से ज्यादा वेतन इन्कम-टैक्स में कट गया था। फिर शुक्ला ने सबके सामने उसे जलील किया। गाली-गलौज हुई। नौबत हाथा-पाई तक पहुँची। और शुक्ला ने उसे कुर्सी दे मारी।

पटरी पर लेटे-लेटे उसका बायाँ हाथ उसके दाहिने घुटने को सहलाने लगा जहाँ शुक्ला की मारी कुर्सी उसे लगी थी। दर्द फिर हरा हो गया ।

असल में यह नौकरी उसके लायक थी ही नहीं - उसने सोचा। ऑफिस में ऊपर से नीचे तक गधे भरे हुए थे। हर सुबह बैग और टिफिन लिए दफ्तर आ जाते थे। दोपहर का खाना खा कर ताश खेलते थे। काम के समय ऑफिस में सीट पर ऊँघते थे या सीट से गायब रहते थे। दिन में कई बार कैंटीन में चाय-कॉफी पीते थे। और बाकी बचे समय में एक-दूसरे की जड़ काटते थे। इसको उससे लड़ाना। उसको इसकी नजरों में गिराना। इसका-उसका पत्ता काटना। बॉस की चमचागिरी में प्रागैतिहासिक काल में पूर्वजों के पास पाई जाने वाली अपनी लुप्त पूँछ हिलाना। और महिला सहकर्मियों को देख कर लार टपकाना।

उसका दम यहाँ घुटता था। वह इन चीजों के लिए नहीं बना था। यहाँ 'टेलेंट' की कोई कदर नहीं थी। आपके गुण यहाँ अवगुण थे, अवगुण ही गुण थे -उसने सोचा।

बचपन में माँ ने सिखाया था-बेटा, झूठ बोलना बुरी बात होती है। पर सारी दुनिया धड़ल्ले से झूठ बोलती थी और ऐश करती थी। पिताजी कहते थे- रिश्वत लेने और देने वाले, दोनों ही अपनी नजरों में गिर जाते हैं। पर यहाँ दोनों मजे में थे। स्कूल में टीचर कहते थे-शराब आदमी का पतन करती है। पर यहाँ दारू पीने और पिलाने वाले, दोनों का ही उत्थान होता था। पिताजी कहते थे-दफ्तर में चुगली-निंदा से दूर रहना, बेटा। पर यहाँ चुगली-निंदा समूचे दफ्तर का टॉनिक थी। दादाजी कहते थे - मेहनती और ईमानदार आदमी का भगवान होता है। पर यहाँ भगवान मेहनती और ईमानदार को शैतान की पा पर छोड़कर न जाने कहाँ गुम हो गया था। आप लोगों ने मुझे यह क्या सिखाया-उसने पटरी पर लेटे-लेटे सोचा। वह यहाँ मिसफिट था। दफ्तर में ही नहीं, घर में भी।

वह चाहता था कि पत्नी उसका सुख-दुख बाँटे। पर पत्नी को पैसा चाहिए था और पैसे से खरीदे जाने वाले सभी ऐशो-आराम।

दत्ताजी भी तो आपके साथ काम करते हैं-वह कहती। उनके पास टाटा-सफारी है। दत्ताजी ही क्यों, शुक्लाजी, सिंह साहब, खान साहब-सबके यहाँ गाड़ियाँ हैं। और आप 'हमारा बजाज' से ऊपर ही नहीं उठ पाते। ऐसी ईमानदारी का मैं क्या अचार डालूँ - वह कहती। आज की दुनिया में रिश्वत नाम की कोई चीज नहीं होती। गिफ्ट्स होते हैं। लोगों का काम करो और उनसे गिफ्ट्स लो - उसका कहना था।

क्या पापा, मेरे सब दोस्त नई-नई गाड़ियों में स्कूल आते हैं। उन सबके पास उनका अपना मोबाइल फोन होता है। उन्हें डेली कम-से-कम सौ रुपए जेब-खर्च मिलता है। इन सबके बिना स्कूल में आपके बेटे की इमेज खराब होती है-बेटा शिकायत करता। उधर पत्नी ताना मारती-इनसे

कुछ नहीं होगा। ये तो राजा हरिश्चन्द्र हैं।

पूरी दुनिया में एक भी आदमी नहीं था जो उसे समझता। बचपन में पिताजी उसे बहुत प्यार करते थे। माँ उसे बहुत चाहती थी। वह दादाजी का लाड़ला था। स्कूल में उसके टीचर कक्षा में फर्स्ट आने पर हमेशा उसकी पीठ ठोकते थे। पर शायद वे सब उसे इस दुनिया के लायक नहीं बना सके- उसने सोचा। उसने किस-किस के लिए क्या-क्या नहीं किया। पर अपना मतलब निकाल कर सब उसे ठेंगा दिखा गए।

शायद इसी को 'प्रैक्टिकल' होना कहते हैं। वह आज भी 'प्रैक्टिकल' नहीं हो पाया। के. के. कह रहा था -तुम्हारी समस्या यह है कि तुम दिमाग से नहीं, दिल से जीते हो। इसलिए तुम यहाँ 'मिसफिट' हो। क्या इस दुनिया में दिल से जीना गुनाह है -उसने सोचा। दिमाग से जीने वालों ने इस दुनिया को क्या बना दिया है। लोग सुबह पीठ पीछे किसी को गाली देते थे। दोपहर में उसी के साथ हें-हें करते हुए खाना खाते थे। लोग अपना काम निकालने के लिए गधे को बाप कहते थे। और बाप को गधा। वह ऐसा नहीं कर पाता था। इसलिए सीधा था। मिसफिट था। मंदिर में पुजारी भगवान के नाम पर लूटते थे। सड़कों पर भिखारी इंसानियत के नाम पर लूटते थे। आजाद भारत में चारों ओर अँधेरगर्दी मची थी। ईमानदार सस्पेंड होते जा रहे थे। कामचोर प्रोमोशन पा रहे थे। धर्म और जाति के नाम पर नेता देश को लूट कर खा रहे थे। हर ओर चोर और बेईमान भरे हुए थे। फर्क सिर्फ इतना था कि कोई सौ रुपए की चोरी कर रहा था, कोई हजार की, कोई लाख की और कोई करोड़ की। इन सबके बीच वह एक लुप्तप्राय अजनबी था।

दूर कहीं से रेलगाड़ी के इंजन की मद्धिम आवाज सुनाई दी। उसने पटरी से कान लगाया। पटरियों में रेलगाड़ी के पहियों का संगीत बजने लगा था।

तो इसे ऐसे खत्म होना था। जीवन को पटरियों पर। रेलगाड़ी के पहियों से कट कर। अच्छा है, इस जीवन से मुक्ति मिलेगी। हैरानी की बात यह थी कि उसका सिर-दर्द अचानक ठीक हो गया। वह रहे या न रहे, किसी को क्या फर्क पड़ेगा। उसकी मौत कल अखबार के भीतरी पन्ने में एक छोटी-सी हेडलाइन होगी। या शायद वह भी नहीं - उसने सोचा।

वह पैर फैला कर पटरी पर पीठ के बल लेट गया। ऊपर हाइ-टेंशन वायरों से घिरा मटमैला आकाश था। उनसे ऊपर, नीचे उड़ रही एक चील को चार-पाँच कौए सता रहे थे। इंजन की आवाज अब करीब आती जा रही थी। उसने आँखें बंद कर लीं। इंजन की आवाज अब बहुत पास आ गई थी। पास, और पास। पटरी और पहियों के बीच का संगीत अब कर्कश और बेसुरा लगने लगा था। उसने एक लंबी साँस ली। पल भर और। इंजन उसके ऊपर से गुजरने वाला था। हैरानी की बात यह थी कि उसे डर नहीं लग रहा था।

एक पल के लिए जैसे उसका वजूद इंजन के शोर में डूब गया। सैकड़ों टन लोहा जैसे उसके ऊपर से गुजर गया। उसकी आँखें खुल गईं। क्या मैं जीवित हूँ -

उसके दिमाग में कौंधा ।

उसने सिर मोड़ कर देखा – साथ वाली पटरी पर एक अकेला इंजन उससे दूर जा रहा था। दूर... और दूर।

एक पल के लिए उसे विश्वास नहीं हुआ। मौत उसे करीब से सूँघ कर जा चुकी थी। अभी उसे जीना था। कहीं कोई था, जो चाहता था कि वह अभी रहे।

लड़खड़ाता हुआ वह पटरी से उठ खड़ा हुआ। उसे लगा जैसे वह कोई सपना देख रहा हो। इंजन अब क्षितिज पर एक घटता हुआ धब्बा रह गया था। मौत उसे छू कर निकल गई थी। पहली बार उसे कँपकँपी-सी महसूस हुई। उसे लगा जैसे उसके हाथ-पैरों में जान नहीं रही। संयत होने में उसे कुछ समय लग गया। आखरि कपड़ों से धूल झाड़ कर वह घर की ओर चल दिया।

रास्ते में उसे कई लोग मिले। वह उन्हें बताना चाहता था कि आज उसने मौत को कितने करीब से देखा था। पर किसी ने उसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया। सब अपनी दुनिया में मस्त थे। चौक पर ट्रैफिक-लाइट नहीं थी, और दो ट्रैफिक पुलिसवाले यातायात को भाग्य-भरोसे छोड़कर एकट्रकवाले को डरा-धमका कर उससे कुछ रुपए ऐंठने में व्यस्त थे। घर के पास नुक्कड़ वाली चाय की दुकान पर कुछ शोहदेनुमा लड़के आती-जाती लड़कियों को छेड़कर मजे ले रहे थे। उसने बगल के पानवाले से एक पैकेट सिगरेट खरीदी और एक सिगरेट सुलगा ली। आराम मिला।

बड़ी जल्दी आ गए आज – घर में घुसते ही टी. वी. पर 'सास-बहू' सीरियल देख रही पत्नी ने व्यंग्य कसा। वह चाहता था कि पत्नी को बताए कि आज वह मरते-मरते बचा। वह उसे बाँहों में भर कर चूमना चाहता था। वह कम्प्यूटर पर 'गेम' खेल रहे बेटे के सिर पर हाथ फेर कर उसेपुचकारना चाहता था। वह चिल्ला कर उन्हें बताना चाहता था कि आज वह बाल-बाल बचा। पर पत्नी टी. वी. सीरियल में और बेटा कम्प्यूटर-गेम में व्यस्त थे। उनकी रुचि उसके जीवन में नहीं थी।

खाना डाइनिंग-टेबल पर पड़ा है – टी. वी. सीरियल में आए ब्रेक के समय पत्नी ने सूचना दी। नहा-धो कर उसने खाना खाया और टी.वी. पर कोई क्राइम-सीरियल देख रही पत्नी से 'टहल कर अभी आता हूँ' कह कर वह घर से बाहर निकल गया। उसने सिगरेट सुलगा कर कुछ गहरे कश लिए और टहलता हुआ वह एक बार फिर रेलवे-लाइन की ओर निकल पड़ा।

यह क्या? पटरियों के बीचों-बीच कोई बैठा हुआ था। वहाँ रोशनी कुछ कम थी। ठीक से दिखाई नहीं दे रहा था। तभी दूर से रेलगाड़ी की सीटी सुनाई दी। और इंजन का जाना-पहचाना शोर करीब आने लगा। उसके शरीर में एक बार फिर कँपकँपी-सी दौड़ गई। क्या कोई और उसकी तरह आत्महत्या करना चाह रहा है? वह अब क्या करे?

अचानक वह हाथ में पकड़ी सिगरेट फेंक कर पटरियों के बीचों-बीच बैठी आकृति की ओर चिल्लाते हुए दौड़ने लगा। गाड़ी के इंजन की रोशनी करीब आती जा रही थी। फटे-पुराने कपड़े पहने बिखरे बालों वाली एक नारी आकृति पटरियों के बीचों-बीच सिर झुकाए बैठी थी। पटरियाँलाँघता वह बेतहाशा दौड़ा। रेलगाड़ी और करीब आ गई थी। उसे लगा, वह उस युवती को

नहीं बचा पाएगा। उसने पूरी जान लगा दी और इंजन के ठीक मुँह में से युवती को दूर खींच लिया। रेलगाड़ी धड़ा-धड़, धड़ा-धड़ करती हुई पटरी पर निकलती जा रही थी। मरना चाहती थी? गाड़ी गुजर जाने के बाद उसने युवती को झकझोर कर पूछा। युवती के मुँह से एक अस्पष्ट-सी ध्वनि निकली। वह केवल फटी हुई आँखों से उसे देखती रही। कोई भिखारन है। शायद गूँगी-बहरी -- युवती के फटे-पुराने कपड़े देख कर उसने सोचा। अब मैं क्या करूँ?

नारी-निकेतन वहाँ से ज्यादा दूर नहीं था। पर उसे सुबह के अखबार के मुख-पृष्ठ पर छपी खबर याद आई -- ''नारी-निकेतन या देह-व्यापार का अड्डा?'' और उसने युवती को नारी-निकेतन ले जाने का विचार त्याग दिया।

इसे पुलिस-स्टेशन ले चलूँ क्या? उसने सोचा। पर पुलिसवाले आज तक उसमें विश्वास नहीं जगा पाए थे। वे मुझ ही से सौ तरह के सवाल पूछने लगेंगे। कहाँ मिली? कब मिली? तुम उस समय वहाँ क्या कर रहे थे? वगैरह -- उसने सोचा। और अगर पुलिसवाले मुझ ही पर शक करने लगेतो? मुझ ही से रिश्वत माँगने लगे तो?

आखिर वह उस भिखारन को पास के पार्क में बनी एक बेंच पर बिठाकर आगे बढ़ गया। अमावस का आकाश तारों से ढँका हुआ था। बीच-बीच में कोई टूटता हुआ तारा कुछ देर चमकता और फिर गायब हो जाता।

सड़क पर आ कर उसने राहत की साँस ली। और तब उसे ख्याल आया कि आज दूसरी बार वह मरते-मरते बचा था। वह भिखारन उसकी कौन थी? उसे बचाते हुए अगर वह रेलगाड़ी के नीचे आ जाता तो? ''तो क्या? दुनिया में एक अदद 'मिसफिट' कम हो जाता।'' उसने मुस्करा कर जोर से कहा और कोई भूला हुआ गीत गुनगुनाता हुआ घर की ओर चल पड़ा।

सुशांत सुप्रिय, मार्फत श्री एच.बी. सिन्हा, 5174, श्यामलाल बिल्डिंग, नई दिल्ली–110055
मो. : 8512070086, ई–मेल : sushant1968@gmail.com

✧ ✧ ✧

धर्मनिरपेक्षता का भारतीय संदर्भ : एक मानवतावादी दृष्टिकोण

डॉ. श्याम सुन्दर प्रसाद

स्वतंत्रता के बाद भारतीय राज्य द्वारा नई राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से एक प्राचीन समाज को लोकतांत्रिक आधार पर पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। नवीन राज्यतंत्र लोकतंत्र, उदारवाद, संविधानवाद, समाजवाद और समतावाद पर आधारित है। (सुषमा यादव, 2000 : 535) भारत में लोकतांत्रिक सामाजिक चेतना के निर्माण हेतु धर्मनिरपेक्षता के अंतर्गत धर्म एवं जाति - निरपेक्ष समाज बनाने का प्रयास किया गया।

धर्मनिरपेक्षता' शब्द का प्रथम प्रयोग 1648 ई. में उस समय किया गया जब यूरोप में चर्च की सम्पत्ति को पूर्णतः नरेशों के नियंत्रण में कर दिया गया था। तभी से धर्मनिरपेक्षता का प्रयोग सामाजिक आचरण व्यवस्था के रूप में महत्वपूर्ण तरीके से किया जा रहा है। (ए.एस. नारंग, 1998 : 357) भारतीय समाज की बहुआयामी एवं जटिलताओं से परिपूर्णता के कारण धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता बहुत है। वर्तमान भारतीय समाज के धर्म, जाति, भाषावाद एवं क्षेत्रीय मतभेदों की प्रक्रिया ने एक विखंडनात्मक रूप में 'साम्प्रदायिकता' को जन्म दिया है। धर्मनिरपेक्षता और सम्प्रदायिकता का अन्तर्सम्बन्ध भारतीय राजनीति में ऐसा प्रतीत होने लगा है कि 'राष्ट्रवाद' और 'लोकतंत्र' के अस्तित्व के लिए एक गंभीर चुनौती हैं।

धर्म सार्वजनिक जीवन से अलग है और मनुष्य का व्यक्तिगत मामला है। धर्म का काम धर्मों को समान रूप से सम्मान करना तथा सम्मानजनक दृष्टिकोण अपनाने पर बल देना है। यह जातिवाद, अंधता, द्वेषवाद के विरुद्ध होते है। यह जनता की संस्कृति का आधार है। राज्य भारत की सांस्कृतिक धरोहर (किसी भी धर्म के हो) की रक्षा करना है। व्यक्ति अपने धर्म के प्रति निष्ठा और प्रचार की स्वतंत्रता है लेकिन गैर धार्मिक नहीं सकता। धर्म विज्ञान का विरोधात्मक नहीं है। राष्ट्र और धर्म के क्रियाकलाप से एक दूसरे का कोई सरोकार नहीं होता है। धर्मनिरपेक्षता में 'धर्म' सामान्य अर्थ रखता है। जिसके मुताबिक हिन्दू,

इस्लाम, ईसाई, पारसी व जैन आदि को धर्म कहते हैं। यह प्राचीन विद्वानों द्वारा अंगीकार किया हुआ स्वकर्तव्य पालन नहीं है। इस अर्थ में यह धर्म का प्रतिरोध नहीं करता। धर्म किसी भी सभ्य समाज की आधारशिला होता है। धर्म जीवन की गतिविधि और प्रगति का सहायक होता है। धर्म 'Religion' का समानार्थी नहीं है। 'रिलीजियन' का अर्थ 'मजहवी या सांप्रदायिक धर्म' से है जो 'तात्विक धर्म' से भिन्न है। 'धर्म' समदृष्टि रखनेवाला, विश्वकल्याण व सार्वजनिक, मानवता के मूल्यों का संवर्धनकर्ता तथा अनेकता में एकता को स्थापित करने की शक्ति रखता है, जबकि 'रिलीजियन' एकांगिक धर्म की व्याख्या करनेवाला, मजहवी उत्पाद, संकुचित व समदर्शिता का पूर्णतया अभाव रखता है। (आई.जे.एन.डी., 2013 : 52, 53) राजनीति, कानून, अर्थव्यवस्था, शिक्षा, प्रशासन, संस्थाएं, नैतिकता आदि में धर्म का हस्तक्षेप नहीं होता है। इन सभी क्षेत्रों से जुड़ी समस्याओं पर धार्मिक विचार से नहीं बल्कि मानव कल्याण की दृष्टि से विचार किया जाना लाजमी है। धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा राज्य द्वारा लोगों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न करने का समर्थन करता है। लेकिन समाज में धार्मिक बुराइयों के प्रति सहनशील नहीं होता। राष्ट्र का निर्माण धर्मों की एकता के आधार पर होना श्रेष्ट राज्य का द्योतक है। राज्य का कर्तव्य सौहार्द्र और सामाजिक समरसता लाना है। भारत जैसे बहुलवादी समाज में धर्मनिरपेक्षता का अर्थ मानवतावादी जीवन दर्शन से है। 'धर्मनिरपेक्ष राज्य (Secular State)' के विपरित 'धर्मतंत्रवादी राज्य (Theocratic State) होता है । भारतीय राज्यव्यवस्था धर्मतंत्रवादी नहीं है। धर्मतंत्रवादी राज्य या मजहवी राज्य का एक धर्म विशेष से संबंध होता है और इसके कायदे-कानून धर्मपुस्तकों के आधार पर निर्मित होते है । जैसे - पाकिस्तान, ईरान, सउदी अरब आदि ।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय राज्य द्वारा नई राजनीतिक संस्थाओं के माध्यम से एक प्राचीन समाज को लोकतांत्रिक आधार पर पुनर्गठित करने का प्रयास किया गया। नवीन राज्यतंत्र लोकतंत्र, उदारवाद, संविधानवाद, समाजवाद और समतावाद पर आधारित है। (सुषमा यादव, 2000 : 535) भारत में लोकतांत्रिक सामाजिक चेतना के निर्माण हेतु धर्मनिरपेक्षता के अंतर्गत धर्म एवं जाति - निरपेक्ष समाज बनाने का प्रयास किया गया। भारतीय संविधान के कुछेक अनुच्छेद जैसे - 15, 16, 19, 25-29 एवं 51 (क) आदि से स्पष्ट होता हैं। सुदीप्तो कविराज, अशोक मित्र, भमानी सेनगुप्ता इत्यादि अनेक विश्लेषकों का मानना है कि 'भारत में लोकतांत्रिक राज्य की मूल संरचना अभी तक औपनिवेशिक ही है । (सुषमा यादव, 2000 : 558) हालांकि इसका काफी सीमा तक भारतीयकरण हुआ है परंतु औपनिवेशिक राज्य के मूलभूत ढाँचे में परिवर्तन नहीं किया गया। पंडित जवाहरलाल नेहरु ने भी अपनी अधिकांश समस्याओं को ब्रिटिश नीतियों का सीधा परिणाम माना है। (जे. एल. नेहरु, 1956 : 305) 'समाजवादी' और 'पंथनिरपेक्ष' लक्ष्य भारतीय संविधान की प्रस्तावना में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 में सम्मिलित किए गए। यद्यपि दोनों शब्द पाश्चात्य राजनीतिक परम्पराओं से ग्रहण किए गए है तथापि उनके अर्थ भारतीय संदर्भ में पूर्णत: मौलिक हो गए है। (सुषमा यादव, 2000 : 537) भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्मनिरपेक्ष होने के वास्तविक अर्थ व्यक्ति/समाज/राजनीतिक दल/सरकार/संस्थाएं का अलग अलग स्वरूप में देखा जा सकता है। व्यक्ति से समाज का निर्माण होता है। एक धर्मनिरपेक्ष समाज ही धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को वास्तविक रूप में लागू करवा सकता है। समाज का स्वरूप अगर धार्मिक भावनाओं में वैचारिक व वैज्ञानिक दृष्टिकोण हो तो इस मुद्दे पर विवाद उठने का सवाल ही नहीं। एक

धर्मनिरपेक्ष समाज की सहनशीलता, आर्थिक जनकल्याण, सामाजिक न्याय एवं कानून के समझ समानता महत्वपूर्ण मूल्य होते हैं। भारतीय राजव्यवस्था में राजनीतिक दलों का महत्वपूर्ण योगदान है। यही सरकार बनाती है। जो देश के लिए नीतियों एवं कार्यकमों का निर्माण कर समाज को समावेशी विकास की ओर ले जाती है। राजनीतिक दलों से देश के अधिकांश जनसंख्या भी जुड़ी है। इसलिए इन दलों का प्रभाव जनता में ज्यादा दिखता है। राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक संस्थाओं एवं कार्यकारी संस्थाएं नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन का कार्य करती हैं। संस्थाओं का लोकतांत्रिक आधार होना धर्मनिरपेक्षता को इंगित करता है। संस्थाओं की स्थिति और पदासीन अधिकारियों की पृष्ठभूमि निष्पक्ष और समतामूलक न्यायोचित होनी चाहिए ।

धर्म और राजनीति का समन्वयकारी जुड़ाव समाज और देश की प्रत्येक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक व्यवस्था को तेजी दे सकती है। यह संभव है जब जन-प्रतिनिधियों द्वारा जनकल्याण और विकास की राजनीति सर्वोपरि हो तथा राज-पाट की राजनीति निदृष्ट हो। नैतिकता व धर्मविहीन राजनीति ने 'राजनीति के संक्रमण' की पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है। धर्म रहित राजनीति में मार्गदर्शन सिद्धान्तों का अभाव रहता है और इससे राजनीति व्यक्तिगत स्वार्थो और प्रभुत्व का उपकरण बन जाती है जो अंतत: धर्म राजनीति से खुद नियंत्रित होने लगती है। शुचितावादी राजनीति जातिवाद, सम्प्रदायवाद व हिंसा-प्रतिहिंसा जैसी विसगतियों को पनपने नहीं देती। धर्म और राजनीति का एक होना भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में 'धार्मिक राजनीति' का रूप ले लेती है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में धार्मिक राजनीति ने उग्रवाद, नक्सलवाद, आतंकवाद आदि जैसे प्रवृतियों को बढ़ाने का कार्य किया हैं। इस तरह के कार्यों को पर्याप्त पैसा की अदायगी एक धार्मिक राजनीति ही कर सकती है। राजनीतिक दल व नेता चुनावी पर्व में धार्मिक दलीलों को अपना आधार बनाकर हिंसा और वोट बैंक की राजनीति करते है। यह राजनीति समाज को विघटित कर राष्ट्रीय एकता और अखंडता को खराब करती है। इसलिए इस तरह धर्म का अर्थ जो धार्मिक मतभेदों को बढ़ाता है तो राजनीति से अलग रखना जरुरी है।

स्वतंत्रता के बाद धर्मनिरपेक्षता का प्रयोग अवसरवादी नारे के रूप में ज्यादा हुए है। (ए. एस. नारंग, 1998 : 360) चुनावी सीजन आते ही धर्म का बोल-बाला चुनावी रैलियों में देखा जा सकता है। राजनीतिक दल के वरीय नेताओं द्वारा नारों के माध्यम से धार्मिक भावनाओं को भड़काने का काम प्राथमिकता के साथ होने लगता है। हो क्यों ना? क्योंकि कई दलों का निर्माण धर्म और जाति की परकाष्ठा पर हुई हैं। तथाकथित हिंदूवादी दलों का हिंदुत्व के नाम पर हिन्दुओं का समूहीकरण एवं अन्य धर्मों के विरोध व घृणा फैलाकर करने की मंशा रहती है तो मुस्लिमवादियों या इस्लामियत वाले हिन्दू प्रतिक्षेप व हिन्दू के वर्चस्व का डर भरकर कौमी एकजुटता का नारा देते है। अवसरवादी नारों का स्वरूप ऐसे होता है कि उनमें मौकापरस्ता छुपा रहता है। हर मुद्दे को अपने फायदे को ध्यान में व्याख्या किया जाता है । सर्वोच्य न्यायालय की पीठ ने हाल ही में जनप्रतिनिधि कानून की धारा 123 (3) में आए शब्द 'उसका धर्म' का अभिप्राय बताते हुए धर्म, नस्ल, जाति, समुदाय या भाषा के आधार पर वोट मांगने को भ्रष्ट तरीका करार दिया है। ऐसे मुद्दे को देखते समय 'धर्मनिरपेक्षता' का ख्याल रखा जाना चाहिए। (जनसत्ता, 2 जनवरी, 2017 : 01, 08) लेकिन भारतीय राजनीति को इस भ्रष्ट तरीका से अछूता रहना असंभव है। इसका प्रयोग चुनाव के समय

धड़ल्ले से करने में कोई संकोच नहीं करता। चाहे चुनाव आयोग अपने चुनाव कानून प्रावधान का कितना भी हवाला दे दे। धर्म तोड़ने का नहीं बल्कि जोड़ने का काम करता है। यह मान्यता सभी धर्मों की है। भारत में अधिकांश जनसंख्या तार्किक और वैज्ञानिक तरीके से सोचने में अक्षम है। वहां पर कुछेक लोगों या समूहों द्वारा धर्मनिरपेक्षता का भ्रांतिपूर्ण नकारात्मक अर्थांगन कर तुष्टीकरण की नीति को अपनाने में सफल हो जाते है। धार्मिक गुरुओं और उलेमाओं द्वारा धर्म की गलत व्याख्या अपनी रुढिवादी परम्परा और प्रभुत्व का कायम रखने में होते है। यहां मकसद ही है एक धर्म की कीमत पर दूसरे धर्म का विकास करना। वर्तमान की राजनीति ने धर्मनिरपेक्षता को मुसलमानों से जोड़ दिया है। धार्मिक नेताओं की बयानबाजी मुसलमानों की प्रगति व विकास और उनकी बेदहाल स्थिति को उजागर करती है। मुसलमानों के विरुद्ध एक शब्द बोलना धर्मनिरपेक्षता पर प्रश्न खड़ा कर देता है और सियासत शुरू हो जाता है। समान नागरिक संहिता से अभिप्राय किसी क्षेत्र में निवास करने वाले समस्त नागरिकों के लिए एक समान कानूनों से है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद- 44 में कहा गया है कि "राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।" (भारत का संविधान, 2005 : 26) समान नागरिक संहिता लाने के मुद्दे पर पहले भी वाद-विवाद हुए है। वर्तमान में मुसलमानों के तीन तलाक को खत्म करने की चर्चा जोरो पर है। देश में विभिन्न जातियों, धर्मों के अपने-अपने नियम कानून है। साथ ही देश में साम्प्रदायिक हठधर्मिता व कट्टरवादिता भी कम नहीं है। इससे देश के अनेक टुकड़े में बटने की संभावना है। इसलिए साझा कानून के आधार पर राष्ट्रीय संहिता बनाने की जरुरत है। जिसका आधार संवैधानिक और सार्वजनिक हो। जिससे विभिन्न धर्मों के महत्व के साथ उनके व्याप्त बुराइयों एवं कुप्रथाओं को बहिष्कृत किया जाए। यह कार्य उस धर्म से जुड़े धार्मिक समूह या गुरुओं के द्वारा अविवादित रूप से किया जा सकता है। क्योंकि विभिन्न धर्म गुरुओं की बातों को उनके अनुयायी जल्दी समझ जाते है। लेकिन समान नागरिक संहिता धर्म को ही प्रभावित नहीं करेगा। बल्कि एकात्मक शासन व्यवस्था, जम्मू एवं कश्मीर का विशेष दर्जा को खत्म करने, आरक्षण के मुद्दे और अनेक क्षेत्रों की प्रकृति और परिभाषाओं को बदलने की आवश्यकता होंगी। इसे व्यावहारिक रूप में लागू करना सरकार के लिए बहुत मुश्किल है। राज्य की धर्मनिरपेक्षतावादी नीतियों का ध्येय अल्पसंख्यकों के लिए सामाजिक समानता, सामाजिक कल्याण और सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना है। लेकिन देखने की बात है कि सरकार एवं राजनीतिक दल इस ध्येय के प्रति कितना प्रतिबद्ध है? सामाजिक व धार्मिक मतभेद तथा वोट बैंक की सामाजिक ताना-बाना ने लोगों में किसी न किसी रूप में असुरक्षा की भावना पैदा कर दिया है। इससे प्रत्येक व्यक्ति जाति, वर्ग, धर्म, उपधर्म आदि में बंटकर एक समूहीकरण की ओर जा रहे है। इस तरह की स्थिति में शक्तिशालियों का अस्तित्व रह सकता है। यही व्याप्त असुरक्षा की भावना अल्पसंख्यकों को एकत्रित कर रही है। अब धर्मनिरपेक्षता के नाम पर विभिन्न धार्मिक व सांस्कृतिक, भाषायी, जनजातीय अधिकारों की मांगों को इतना विस्तार किया गया है कि एक राष्ट्र, एक संस्कृति और एक धर्म की बात करना भारतीय राज्य के लोकतांत्रिक अस्तित्व के लिए गंभीर चुनौती बन सकती है। (सुषमा यादव, 2000 : 577) अतः राष्ट्रीय हितों की रक्षा जरूरी है। परंतु राज्यों के बीच सहयोग व शांति एवं देश के विभिन्न समुदायों के बीच के संबंध उससे भी ज्यादा जरुरी है। वर्तमान में नेताओं का राष्ट्रवाद संकीर्ण और अनुदार लगता है। मानवता का हित और मैत्री के विकास की

कमी है। सरकार को सुनिश्चित करना होंगा कि अल्पसंख्यकों को विकास का अवसर बिना भेदभाव के मिलें और उनकी धार्मिक पहचान बरकरार रहें ।

धर्मनिरपेक्षता और साम्प्रदायिकता एक दूसरे की विरोधी प्रवृतियां रही है। साम्प्रदायिकता में जहां धार्मिक भावनाओं का उपयोग गैर धार्मिक उद्देश्यों जैसे- राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है, वहीं धर्मनिरपेक्षता धर्म को राजनीति एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों से अलग करने पर बल देती है। धर्मनिरपेक्षता राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ावा देता है। लेकिन साम्प्रदायिकता राष्ट्र को तोड़ने व बांटने का काम करता है। धर्मनिरपेक्षता के समझ जो चुनौतियां है, उनका सामना करने के लिए वे सब बातें जरूरी है जो साम्प्रदायिकता पर रोक लगाएं। सांप्रदायिकता एक विचारधारा है तथा राजनीति उसी विचारधारा के इर्द-गिर्द घूमती है। सांप्रदायिकता इतिहास से जुड़ी हुई है तथा यह धर्मनिरपेक्षता के विरुद्ध है जो हाल के वर्षों में संश्य के दायरे में आती है। सांप्रदायिकता राष्ट्रवाद की विरोधी नहीं, बल्कि यह पूर्ण रूप से धर्मनिरपेक्षता का विरोध करती है। (शिल्पी पाण्डेय, 2011 : 106, 102, 103) स्वतंत्रता के बाद के साम्प्रदायिकता के कारणों में प्रमुख रूप से निरर्थक धर्मनिरपेक्ष अवधारणा, अतिवादी राष्ट्रवाद की प्रवृति, राजनीति की नकारात्मक महत्वाकांक्षा, अल्पसंख्यकों के अस्तित्व के प्रति असुरक्षा की भावना, प्रशासन की विफलता, अन्य देशों की साजिश, मीडिया की नकारात्मक भूमिका आदि है। उपरोक्त कारण वर्तमान में साम्प्रदायिकता की प्रवृति को बढ़ावा देने में मददगार साबित हो रहे हैं। इनके आलावा सबसे प्राथमिक रूप से महत्वपूर्ण है व्यक्ति में तार्किक सोच व समझ की कमी। जो भारत को साम्प्रदायिकता के चंगुल से कभी नहीं निकलने देगा। भारतीय परिपेक्ष्य में साम्प्रदायिकता का अर्थ- असहिष्णुता का मुद्दा साम्प्रदायिकता बौद्धिक वर्ग की देन है, धार्मिक चेतना का विकास करना सम्प्रदायिकता है आदि बन चूका है। यह वाद-विवाद का विषय धर्मनिरपेक्षता के अर्थ को वास्तविकता के धरातल तक आने नहीं देता।

भारत जैसे देश के लिए राष्ट्रीय एकीकरण से अभिप्राय-विभिन्नताओं को इस प्रकार बनाए रखना है जिससे राष्ट्र का अस्तित्व खतरे में न पड़े। राष्ट्रीय एकीकरण के विघटन के कई उतरदायी कारणों में सांप्रदायिकता महत्वपूर्ण है। साम्प्रदायिकता को कम करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को ईमानदार लोकतांत्रिक होना अनिवार्य है। व्यक्ति इनमें प्रथम कड़ी है। क्योंकि व्यक्ति ही समाज में मानवीय मूल्यों का विकास कर सकता है। अंतत: साम्प्रदायिक भावनाओं की शक्ति के भारतीय परिप्रेक्ष्य को कम किया जा सकता है। जागरूक नागरिकों, धार्मिक समुदायों, धर्मनिरपेक्ष नेताओं व बुद्धिजीवियों द्वारा राजनीति में प्रभावशाली हस्तक्षेप से समाज मानवतावादी की ओर बढ़ सकता है। इसके साथ आर्थिक कारणों की वास्तविकता को समझना होगा। एक सम्प्रदाय के पास संसाधनों एवं उनके वितरण में कमी एवं भेदभाव की नीतियां लोगों को साम्प्रदायिकता के बैनर तले आने को मजबूर करता है। सामाजिक व्यवस्था एवं आर्थिक विकास का आधार साम्या (समानता न्याय) हो तथा राजनीति विकास की रहे, जिसमें धार्मिक मुक्ति दिखें। धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता के स्वीकृत स्थिति के लिए एक सार्वभौमिक विचारधारा एवं साझा कानून बनाने की आवश्यकता है। जो वृहद रूप में उदारवादी-मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रोत्साहित करता हो। भारत की एकता अनेकताओं की सम्पन्नता पर आधारित रही है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि

धर्मनिरपेक्षता एवं धर्मनिरपेक्षीकरण की नीति का अनुसरण करना चाहिए। धर्मनिरपेक्षीकरण और राजनीतिक आधुनिकरण की आवश्यकता है। विरोध और हिंसा की राजनीति एवं अवसरवादी राजनीति की जगह सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध संघर्ष करना उचित है।

संदर्भ :

कुमार, वी. वी (सम्पादित) (2016), 'वर्तमान राजनीति : ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में ज्वलंत समस्याएं', आस्था भारती (त्रैमासिक), वर्ष-13, अंक-02, जनवरी-मार्च, दिल्ली, पृ.- 61-75

चौधरी, बी. बी. (1980), 'भारतीय शासन एवं राजनीति', ...पृ.- 535-550 तायल, बी.बी., (2007), 'भारतीय राजनीति : तुलनात्मक परिपेक्ष्य', सुल्तान चन्द एन्ड सन्स, नई दिल्ली

दमानी, मधु (2013), 'भारत में धर्मनिरपेक्षता, साम्प्रदायिकता, अल्पसंख्यक अधिकार और राष्ट्रवाद से संबंधित समकालीन विवाद', में 'भारत में 'आज का भारत : राजनीति और समाज', बासुकी नाथ चौधरी एवं युवराज कुमार (सम्पादित), ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली

नारंग, ए.एस. (1998), 'भारतीय शासन और राजनीति', गीताञ्जली पब्लिशिंग हाउस, पृ.- 357-378, नई दिल्ली

पाण्डेय, शिल्पी (2016), 'साम्प्रदायिक हिंसा के बदलते हुए चरित्र में एक नया अध्याय: गोपालगढ़ (भरतपुर, राजस्थान) की घटना, जनवरी-जून, आई.आई.पी.ए., नई दिल्ली, पृ.- 106-115

भारत का संविधान, बेयर एक्ट (2005), सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन्स, इलाहबाद भार्गव, राजीव (2013), 'धर्मनिरपेक्षता और समावेशी समाज', योजना, अगस्त, वर्ष-58, अंक-08, नई दिल्ली, पृ.- 21-24

यादव, सुषमा (1988), 'धर्मनिरपेक्षता और भारतीय परम्परा', नार्दर्न बुक सेंटर, नई दिल्ली यादव, सुषमा एवं वर्मा, गोविंद राम (2000), 'भारतीय राज्य : उत्पत्ति एवं विकास (अध्याय - 11)', आकार पब्लिकेशन्स, पृ.- 534-579, दिल्ली

सुमन, ममता (2013), 'धर्म और साम्प्रदायिकता अंतर्संबंध', इंडियन जर्नल ऑ न्यू डाइमेंशनस-वॉल्यूम-iii (हिन्दी विशेषांक-2), दिसम्बर, उत्तरप्रदेश, पृ.- 52-54

Nehru, J. L (1956), 'The Democracy of India', Meridian Books Ltd, London, P.- 305

Mukherjee, Subrata & Ramaswamy Sushila (2017), *'Multiculturalism'* in Theoretical Foundations and Comparative Politics, Orient Black swan Pvt. Ltd, Delhi, Pp.- 234-246

Bhargava, Rajeev (Ed.) (1998), 'Secularism and its critics', Oxford University Press, Delhi

Bidyut, Chakrabarty (1989), 'Secularism and Indian Politics', Segment book Distributors, New Delhi

Malkani, K.R (1993), 'The politics of Ayodhya and Hindu-Muslim Relation', Har-Anand Publications, New Delhi

Zaheer, Baber (2016), 'Secularism, Communalism and the Intellectuals', Three Essays collection, January, New Delhi

Neera, chandhoke (1999), 'Beyond Secularism: The Rights of Religious minorities', Oxford University Press, New Delhi

Rao Narasinha, P.V (2006), 'Ayodhya 6 Dec. 1992', Penguin, Viking, Pp.- 187-188

डॉ. श्याम सुन्दर प्रसाद, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
श्याम लाल कॉलेज, (प्रातः), दिल्ली विश्वविद्यालय, मोबाइल : 09868733009
ई–मेल : shyamzrd@gmail.com

हिन्दी साहित्य में नारी विमर्श

शिप्पा झा

वहीं सूफी प्रेमाख्यानों में लौकिक पात्रों के माध्यम से अलौकिक परमसत्ता की ओर कवियों ने ष्टिपात किया है। नारी परमात्मा का प्रतीक है जो साध्य है और पुरुष साधक रूप में जीव का प्रतीक है। इन् काव्यों में नारी पुरुष की उपभोग्या नहीं है। वह ऐसी दिव्य शक्ति है जिसके बिना साधक (पुरुष) विरह का अनुभव करता है। वह (साधक) उसकी प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहता है। सूफी काव्यों में नारी उस नूर की तरह है जिसके बिना सारी दुनिया अंधकारमयी है। नारी का सौंदर्य ईश्वरीय सौंदर्य की प्रतिछाया है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है। साहित्य समाज से प्रभावित होता है । साहित्य समाज का कुशल चित्र है। समाज की सारी मान्यताएं, मर्यादायें उसके युग के साहित्य में स्वत: उभर उठती हैं। सम्पूर्ण हिंदी साहित्य नारी की विविध चित्रों से ओतप्रोत है। जिस युग के समाज में नारी का जो स्थान था, उस युग के साहित्य में नारी उसी रूप में चित्रित की गई है। हिंदी साहित्य को चार कालों में विभाजित किया गया है - 'आदिकाल', 'भक्तिकाल', 'रीतिकाल' और 'आधुनिक काल'। आदिकालीन साहित्य हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभिक साहित्य है। जब हिंदी साहित्य के आदिकाल का उदय हुआ, तब छुआ-छूत, जाति-प्रथा, बाल-विवाह, बहुविवाह आदि अनेक कुरीतियाँ - कुप्रथाएँ समाज को खोखला कर रहीं थीं। स्त्रियों की दशा दीन-हीन और दैनीय थी। नारी-समाज में केवल भोग की वस्तु थी। ऐसे समाज में आदिकालीन साहित्य की नींव रखी गयी।

हिंदी साहित्य के इतिहास-क्रम में आदिकाल के बाद भक्तिकाल आता है। भक्तिकाल को हिंदी साहित्य का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। इस युग में पर्याप्त सहित्य रचना हुई। साहित्यिक दृष्टि से दो प्रकार की धाराएँ सामने आईं - 'सगुण भक्ति काव्यधारा' दो शाखाओं में विभाजित हुई - 'रामभक्ति शाखा' और 'कृष्णभक्ति शाखा'। ठीक इसी प्रकार निर्गुण भक्ति काव्यधारा भी दो शाखाओं में विभाजित हुई - 'ज्ञानमार्गी शाखा' अथवा 'संत

काव्यधारा' और 'प्रेममार्गी शाखा' अथवा 'सूफी काव्यधारा'। निर्गुण भक्ति काव्यधारा के साधक ईश्वर को निर्गुण रखते थे। निर्गुण संतों ने नारी को सर्पणीं, विष की बेला, माया आदि माना है। यह वह समय था जब सामंती वातावरण में पतिव्रता नारी को आदर्श नारी समझा जाता था। जो स्त्री अपने सतीत्व के प्रति समर्पित नहीं, वह निंदा के पात्र हुआ करती थी। संत कवियों ने भक्ति और साधना के मार्ग में नारी के प्रति आकर्षण को बाधक रूप में स्वीकार किया है।

कबीर जननी रूप में नारी को सम्मान देते हैं–

'हरि जननी मैं बालक तोरा'

पतिव्रता नारी के प्रति कबीर लिखते हैं –

'पतिबरता मैली भली, काली, कुचिल, कुरूप।'

'पतिबरता के रूप पर, बारौ कोटि स्वरूप।।'

वहीं सूफी प्रेमाख्यानों में लौकिक पात्रों के माध्यम से अलौकिक परमसत्ता की ओर कवियों ने दृष्टिपात किया है। नारी परमात्मा का प्रतीक है जो साध्य है और पुरुष साधक रूप में जीव का प्रतीक है। इन् काव्यों में नारी पुरुष की उपभोग्या नहीं है। वह ऐसी दिव्य शक्ति है जिसके बिना साधक (पुरुष) विरह का अनुभव करता है। वह (साधक) उसकी प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहता है। सूफी काव्यों में नारी उस नूर की तरह है जिसके बिना सारी दुनिया अंधकारमयी है। नारी का सौंदर्य ईश्वरीय सौंदर्य की प्रतिछाया है।

सगुण भक्तिशाखा में भक्त कवि ईश्वर को सगुण साकार रूप में देखते हैं। इस युग में मीरा जो कृष्णभक्त कवि की श्रेणी में आती हैं, एक सशक्त नारी के रूप में उभरती हैं। वे तदयुगीन समाज में प्रचलित सती–प्रथा जैसी कुरीतियों का विरोध करती हैं। वे विधवा होने के बाद भी कुल की रीतियों को नहीं अपनाती–

'कृष्णगिरधर गास्यां सती न होस्यां'

'मन मोह्यो धन नामी।।'

उन्होंने लोक–लाज का त्याग कर भक्ति मार्ग को चुना। उन्होंने पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था को खुली चुनौती दी तथा अपने आप को सभी पारिवारिक रिश्तों से मुक्त किया। उनमें श्रीकृष्ण के प्रति समर्पण का भाव है–

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।'

'जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।।'

हिंदी साहित्य के इतिहास में भक्तिकाल के बाद रीतिकाल आता है। तत्कालीन सामाजिक स्थिति सामंती व्यवस्था पर आधारित थी। इस युग में धीरे–धीरे सामाजिक मूल्य खत्म होते जा रहे थे। बाल–विवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा आदि कुरीतियाँ बढ़ रही थीं। वैश्यावृति को समाज ने बढ़ावा मिलने लगा। नारी भोग–विलास की वस्तु बनकर रह गयी। आश्रयदाता कवि सामंतों के मनोरंजन के लिए काव्य–रचना किया करते थे। नारी का नख–शिख सौंदर्य वर्णन करने की परिपाटी चल पड़ी। धर्म के नाम पर विभिन्न व्यभिचार और कुकर्मों को बढ़ावा मिल रहा था। समाज में अनाचार फैलने

लगा। राधा और कृष्णा की भक्ति और लीला-भाव की आड़ में विलसिकता पूर्ण वातावरण का निर्माण किया जा रहा था। भक्ति रस श्रृंगारिकता में डूबने लगा।

रीतिकाल के बाद हिंदी साहित्य के इतिहास का आधुनिक काल 19वीं सदी में आरम्भ होता है। आधुनिक युग में वर्षों से चले आ रहे नारी के प्रति पुरुष के पक्षपात, अनादर और अविश्वास को देखकर भावुक कवि मैथिलीशरण गुप्त जी की लेखनी करुणा से बिलख उठी थी।

'अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी'
'आँचल में है दूध और आंखों में पानी।।'

बीसवीं शताब्दी की नारी, जो अपनी सामाजिक महत्ता के प्रति पूरी तरह से सचेत है और जो जानती है कि समाज की इकाई वह भी एक सचेष्ट एवं महत्वपूर्ण अंग है-

'उस में मेरा भी कुछ होगा, जो कुछ तुम पाओगे।'

आधुनिक काल के छायावादी युग में नारी की मुक्ति का स्वर गूंज उठा। रीतिकालीन काव्य में नारी की छवि जो भोग्या और वासनातृप्ति के साधन रूप में बन गयी थी, उस छवि को छायावादी कवियों ने तोड़ा। छायावाद में नारी को इस करुण दशा से पूर्णत: स्वाधीन करने और शरीर की अपेक्षा आत्मिक सौंदर्य पर बल दिया। इन कवियों ने नारी को एक ऐसी शक्ति के रूप में स्वीकार किया जो कवि को काव्य-रचना की प्रेरणा प्रदान करती है।

नारी को पूज्य मानकर छायावादी कवि प्रसाद कहते हैं -

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो'

इस युग में श्रम करने वाली स्त्रियों को महत्ता दी गयी। कवि निराला ने भी नारी के सौंदर्य चित्रण के साथ-साथ उसकी स्वतंत्रता पर भी अपनी कविताओं में बल दिया है-

'वह तोड़ती पत्थरय'
'देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर।'

अत: हम कह सकते हैं कि हिंदी साहित्य में नारी की दशा का सांगोपांग वर्णन मिलता है। तत्कालीन समाज की परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा, जिसका प्रमाण हम सब के समक्ष है।

शिप्पा झा, हिन्दी विशेष, (तृतीय वर्ष), दौलतराम महाविद्यालय, दिल्ली, विश्वविद्यालय
सम्पर्क : 9654781112, ई-मेल : sjha01370@gmail.com

अमरकांत की कहानियों में प्रतीक

सुलोचना कुमारी

यहाँ 'छिपकली' शोषक और 'कीड़ा' शोषित वर्ग के प्रतीक हैं। सामंती व्यवस्था स्वतंत्रता के बाद जमींदारी-प्रथा उन्मूलन की नीति के तहत कमजोर हो गयी थी और पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत फिर से उसकी जड़ जम गयी। इसी स्थिति को प्रतीकों के माध्यम से लेखक अमरकांत स्पष्ट करते हैं। 'छिपकली' कहानी शीर्षक शोषक व्यवस्था का प्रतीक है। छिपकली की दुम बार-बार कटती है और प्राकृतिक तरीके से बार-बार उग आती है। छिपकली की कटी पूँछ का बार-बार उग आने में शोषण वृत्ति के बने रहने की जिद्द है। अमरकांत कहना चाहते हैं कि तर्कहीन व्यवस्था में शोषण का अंत संभव नहीं है, क्योंकि समाज उसको संरक्षित और संवर्द्धित करता रहता है।

उत्कृष्ट जीवटता के सृजनशिल्पी अमरकान्त प्रगतिशील चिन्तन को भारतीय संदर्भ में अभिव्यक्त करने वाले सफल कथाकार हैं। वे अपनी भावी पीढ़ी को बेहतर समाज विरासत में देने के लिए प्रतिबद्ध दिखाई पड़ते हैं। उन्हें जिन्दगी की अचूक पकड़ है। वे अपनी कहानियों में प्रतीकों का व्यापक प्रयोग करते हैं। उनके सभी प्रतीक अपने नवीन रूप में हैं, जहाँ सबकी पहुँच वश की बात नहीं है। उनके हर प्रतीक कम - से - कम दो अर्थ का वहन करता हुआ चलता है। उनके सभी प्रतीक एकदम सटीक, सार्थक और संदर्भवान हैं एवं अचरज में डालने वाले हैं। आस-पास के जीवन से जाना-पहचाना ऐसा प्रतीक चुनते हैं, जो चकित कर डालता है। उनका कोई काट या तोड़ नहीं रहता। वे पराकाष्ठा तक साम्यता रखते हैं। उनकी इस विलक्षण प्रतिभा पर अवाक् रह जाना पड़ता है। उनके प्रतीक-प्रयोग को संक्षेप में देखा जा सकता है :

शीर्षक में प्रतीक : अमरकांत की कहानियों के शीर्षकों, पात्रों, पात्रों के आचरणों आदि में प्रतीक-प्रयोग देखने को मिलता है। उनकी कहानियों के शीर्षक जैसे: 'जिन्दगी और जोंक', 'मकान', 'छिपकली', 'कुहासा', 'गगनबिहारी', 'म्यान की तलवारें', 'मछुआ', 'दर्पण', 'हत्यारे', 'ठंढ और ऊष्मा', 'विजेता', 'फर्क', 'लड़की और आदर्श', 'मूस', बहादुर, 'हार','हंगामा', 'मिठास' 'कबड्डी' 'इंटरव्यू', 'बस्ती', 'नौकर', 'लड़का - लड़की', 'पलास के फूल' इत्यादि तमाम ऐसे प्रतीकात्मक

कहानी-शीर्षक हैं, जो स्वतंत्र भारत की विसंगतियों एवं विडम्बनाओं की तस्वीर पेश करते हुए मौजूदा समाज-व्यवस्था पर गहरा प्रहार करते हैं।

'जिंदगी और जोंक' कहानी शीर्षक में रजुआ 'जिन्दगी' और शोषित व्यक्ति का प्रतीक है और 'जोंक' शोषक वर्ग का प्रतीक है। इस कहानी का मुख्य पात्र रजुआ अत्यंत बदहाली में भी जीना चाहता है लेकिन जोंक (शोषक वर्ग) उसके प्राणांत तक शोषण जारी रखता है। 'जोंक' प्रतीक के माध्यम से उसके शोषण की भयंकरता का आसानी से अंदाजा लगाया जा सकता है। शोषक के लिए 'जोंक' जैसा सटीक प्रतीक अद्‌भुत है। **'छिपकली'** कहानी का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। छिपकली उस शोषक व्यवस्था का प्रतीक है, जिसके अंतर्गत साधारण व्यक्ति की हैसियत एक कीट-पतंग की तरह है :

''इसी समय उसका ध्यान एक छिपकली की तरफ गया, जो दीवार पर चुपचाप चिपकी थी और उसके सामने कुछ दूरी पर एक काला कीड़ा फड़-फड़ कर रहा था। रामजीलाल ने सोचा कि यह छिपकली पहले छोटी और दुमकटी थी, लेकिन अब उसकी दूम भी जम आई है और वह मोटी भी हो गयी है। इस ख्याल से उसको बड़ा अचंभा हुआ और उसके सूखे होंठों पर एक मुस्कराहट दौड़ गयी। सहसा छिपकली कीड़े की ओर दौड़ी, परन्तु इसी समय कीड़ा उड़कर नीचे फर्श पर पट से गिर गया।''1

यहाँ 'छिपकली' शोषक और 'कीड़ा' शोषित वर्ग के प्रतीक हैं। सामंती व्यवस्था स्वतंत्रता के बाद जमींदारी-प्रथा उन्मूलन की नीति के तहत कमजोर हो गयी थी और पूँजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत फिर से उसकी जड़ जम गयी। इसी स्थिति को प्रतीकों के माध्यम से लेखक अमरकांत स्पष्ट करते हैं। 'छिपकली' कहानी शीर्षक शोषक व्यवस्था का प्रतीक है। छिपकली की दुम बार-बार कटती है और प्राकृतिक तरीके से बार-बार उग आती है। छिपकली की कटी पूँछ का बार-बार उग आने में शोषण वृत्ति के बने रहने की जिद् है। अमरकांत कहना चाहते हैं कि तर्कहीन व्यवस्था में शोषण का अंत संभव नहीं है, क्योंकि समाज उसको संरक्षित और संवर्द्धित करता रहता है। अमरकांत के रंग-चयन में भी गजब की साम्यता है। शोषक का रंग सुख-सुविधाओं में जीने के कारण छिपकली की तरह सफेद, रंगीन, मोटा, मुलायम और बड़ा है और शोषित पात्र रामजीलाल का रंग अनेक तरह की असुविधाओं और परेशानियों एवं दुखों के कारण कीड़ा की तरह काला, बदरंग, पतला, कड़ा और तुच्छ है। शोषक वर्ग का दोहरा चरित्र, कथनी-करनी में अंतर के लिए भी यह प्रतीक अत्यंत सटीक है, क्योंकि 'गिरगिट (छिपकली) की तरह ही रंग बदलना' इनकी प्रकृति है। इस कार्य में ये उस्ताद हैं।

'कुहासा' कहानी का शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। 'कुहासा' गरीबी और अभावग्रस्तता का प्रतीक है। कुहासा, ठंढ आदि से गरीब लोग ही प्रभावित होते हैं, क्योंकि इनसे बचाव का कोई अपेक्षित साधन इनके पास नहीं होता। ये वस्त्र, भोजन, आवास की समस्या से जूझते रहते हैं। कुहासे और ठंढ के कारण मजदूरी भी नहीं कर पाते। पेट में भोजन नहीं रहने से ठंढ को थोड़ी देर भी झेल सकना इनके लिए अत्यंत कष्टप्रद होता है और ये प्राण त्याग देते हैं। 'कुहासा' कहानी का दूबर कामचोर नहीं था, भोजन और वस्त्र के आभाव में ही ठंढ से ठिठुरकर मर जाता है।

'मकान' कहानी शीर्षक के दो प्रतीकात्मक अर्थ है। परम्परागत अर्थ में यह एक रहने वाला घर है, जो अंधविश्वास के कारण मनहूस है और कहानी का पात्र मनोहर अन्य मकान की तलाश करता है। यह शीर्षक अपने मौलिक अर्थ में व्यवस्था का प्रतीक है, जिसमें रहकर एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति अपनी बदहाली और मानसिक दशा से भ्रमित होकर शांति के लिए छटपटाता है और परिवर्तन चाहता है। तर्कहीन व्यवस्था में रहकर वह इंसानियत भी खो देता है, अपनी पत्नी और बच्चे के साथ न्याय नहीं कर पाता है, कृतघ्न, छली, सनकी, दरिद्र होने पर मजबूर है। व्यवस्था में परिवर्तन के लिए बेचौन वह बार-बार उस व्यक्ति-व्यक्ति के पास जाता है, जहाँ से उसे वास्तव में मदद मिल सकती है। अभी जो व्यवस्था है, उसमें उसे सिर्फ तकलीफ हो रही है। उसे विश्वास है कि मौजूदा व्यवस्था अवश्य बदलेगी :- ''जब मैं बाहर निकलता हूँ तब मेरा मन अपने ही आप पश्चाताप से भर उठता है। मुझमें बीवी और बच्चों का असीम प्यार उमड़कर लहरें लेने लगता है। लगता है कि उनको जितना मैं प्यार करता हूँ, उतना कोई भी किसी को न करता होगा। मैं उनको खुश देखना चाहता हूँ। ऐसा सोचते ही पता नहीं कैसे यह विश्वास मन में आ बैठता है कि यह स्थिति बदल जाएगी। बदलेगी कैसे नहीं।''2

'गगनबिहारी' शीर्षक के अंतर्गत समाज के ऐसे व्यक्ति का चरित्रांकन है, जो मेहनत और श्रम के क्षेत्र में टिक नहीं पाता है और ज्यादातर कल्पना लोक में ही विचरण करता है। जिस तर्कहीन व्यवस्था में कार्य और कार्यफल में कोई समानता नहीं हो, प्रतिभाओं और योग्यताओं की कोई पूछ नहीं हो, वहाँ 'गगनबिहारी' कहानी के सुन्दरलाल जैसे दिवास्वप्न देखने वाले चरित्र ही पैदा हो सकते हैं। 'दर्पण' शीर्षक कहानी भ्रष्टाचारी को दर्पण दिखाकर उसके कृत्यों को उजागर किया जा रहा है। इस कहानी का पात्र कुलदीपक भारती उस भ्रष्ट नेता का प्रतीक है, जो अपने समर्थकों के बेटे-बेटियों के अयोग्यता के बावजूद रिश्वत लेकर या जुगाड़ से नौकरी देता-दिलवाता है, परन्तु जरूरतमंद, गरीब जनता को योग्यता के बावजूद निराश होता है।

''एक लड़का है, पढ़ने में कुछ ठीक नहीं है, किसी तरह बी. ए. किया है, बस आगे पढ़ने का नाम ही नहीं ले रहा है, उसी वजह से इनके बड़े भाई साहब चिंतित रहते हैं..किसी सरकारी दफ्तर में घुस जाता...।''3 ''मैं करा दूँगा..समझे भैया, मैं करा दूँगा, यह अपना काम है।''4 वही गरीब बुढ़िया और उसके लड़के को अभी तक बैठा देख रुखाई से बोलता है :- ''अरे, तुमलोग बैठे हो? मैं तुमसे कई बार कह चुका हूँ कि केवल बी. ए. करने से काम नहीं चलेगा, आगे पढ़ो..किसी चीज की ट्रेनिंग ले लो..वकालत ही पढ़ लो..वकील लोग बड़ा पैसा पीटते हैं।''5

'म्यान की दो तलवारें' शीर्षक साथ-साथ काम करने वाले दो मित्रों का प्रतीक है। ''एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं, इसलिए जितनी आसानी से दोस्ती हुई थी, उतनी ही आसानी से दुश्मनी भी हो गयी।'' 6 आपसी अहं के कारण उत्पन्न कलह के बीच विकल और मदमस्त एक-दूसरे को नीचा दिखाने में ही दिन काट रहे हैं, क्योंकि उनकी प्रतिभा को इस तर्कहीन व्यवस्था ने कोई दिशा नहीं दी है। यह कहानी दिशाहीन युवा की मन:स्थितियों की प्रतीकात्मक कथा कहती है। **'चाँद'** कहानी का शीर्षक में प्रतीकात्मकता है कि जिसप्रकार चाँद को अपना प्रकाश नहीं होता है, वह सूर्य के प्रकाश से ही चमकता है उसी प्रकार कहानी का मुख्य पात्र एक

छोटा-मोटा लेखक है, वह प्रभावशाली लोगों के संपर्क में आकर यश और मान-सम्मान प्राप्त करता है। **'मछुआ'** शीर्षक कहानी का अखिलेश स्वयं को मछुआ मानता है और स्त्रियों को मछलियाँ। मछुए की भाँति ही वह स्त्रियों को अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न करता रहता है। **'अमेरिका की यात्रा'** शीर्षक समाज के ऐसे लड़कों का प्रतीक है, जो अपने यथार्थ को समझे बिना बड़ी-बड़ी काल्पनिक योजनाएँ बनाता है।

'हत्यारे' कहानी शीर्षक शिक्षा, सामाज, राजनीति और प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचारों की धुन्ध में भटकते बेरोजगार युवकों की मानसिक विकृति का प्रतीक है। कुव्यवस्था ने उन्हें अपराध एवं कुकृत्य की खुली छूट दे रखी है। यह संवेदनहीन, मूल्यहीन, विवेकशून्य पीढ़ी एक व्यक्ति की ही हत्या नहीं करती है, बल्कि सम्पूर्ण मानवता की हत्या करत है।

पात्रों में प्रतीक : अमरकांत की कहानियों के रजुआ, 'मूस', 'बहादुर', 'जंतु', 'दूबर आदि पात्र स्वयं दरिद्रता के प्रतीक हैं। इनके नाम से ही उनके जीवन में निहित दरिद्रता का आभास हो जाता है। मदमस्त और विकल नामक दोनों पात्र अहं या मद में मस्त होकर एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए विकल या बेचौन हैं। 'डिप्टी कलक्टरी' कहानी का पात्र शकलदीप बाबू एक निम्न मध्य वर्ग के पिता का का प्रतीक हैं। 'जन्मकुंडली' कहानी का शिवदास बाबू, 'पलास के फूल' का राय साहब आदि शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'उनका जाना और आना' कहानी का पात्र गोपालदास मध्य वर्ग के उन बुजुर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो समय के अनुसार अपने में परिवर्तन नहीं करते हैं और दु:ख भोगते हैं। 'प्रतीक्षा जारी है' कहानी का पात्र कवि राम दूरदर्शी और उनका पड़ोसी प्रद्युम्न समाज के उन व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो भाग्य और ज्योतिषी में आज भी विश्वास करते हैं। 'सागर' कहानी की स्त्री पात्र रजनी आधुनिक युग की मम्मी का प्रतीक है, जो अपने बच्चों का पक्ष मजबूती से लेती है और अपनी अहमियत भी जताती है। उसका पति कुमार बसावन में पुरुष होने का अहं अभी भी शेष है। अपनी गलतियों को वह ईश्वर की मर्जी से जोड़कर देखता है और अपना अहं भी बचा लेता है। उसका बेटा सागर अपना समय अध्ययन में लगाता है। ये सभी पात्र आधुनिक मध्यवर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'जनमार्गी' कहानी का पात्र बलराज उस स्वतंत्रता सेनानी का प्रतीक है, जिसे अपने सर्वस्व समर्पण का फल कुछ भी नहीं मिलता है। अमरकांत की एक बहुत बड़ी विशेषता है कि उनके पात्र अपने निजी व्यक्तित्व और विशिष्टताओं से युक्त रहते हुए भी पूरे समुदाय का प्रतिनिधित्व करते हैं।

पात्रों के रूप, चेष्टा, व्यवहारों में प्रतीक : अमरकांत की कहानियों में मनुष्य कभी-कभी पशु-पक्षियों जैसा आचरण करता दिखाई देता है। यह लगभग उनकी पूरी कहानियों में देखने को मिलता है। 'जिंदगी और जोंक' कहानी का पात्र रजुआ ''गधो की भाँति ढीचूँ-ढीचूँ करता है, लालची कुत्तों की तरह इधर-उधर घूमता है, गिद्ध की तरह न मालूम कहीं से टपक पड़ता है, सूअर की भाँति चापुड़-चापुड़ खाता है।''7 'कुहासा' कहानी की ''मजदूरिनें किसी की ओर देख नहीं रही थीं, बल्कि वे सिर के पल्ले को थोड़ा आगे खींचकर एक-दूसरे की ओर मुँह करके भेड़ों की तरह खड़ी थीं।''8 अन्य कहानियों के पात्र प्रतीकात्मक चेष्टा करते हैं। मनुष्य का यह आचरण सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्रों में व्याप्त जंगलराज का प्रतीक है।

''समाज में यदि तर्कशील, मानवीय व्यवस्था होती तो सक्रियता, कर्मठता सार्थक होती है, लेकिन 'जंगल' में व्यक्तिगत कर्मठता का भरोसा मृगतृष्णा है। जंगल का यह एक रूप है। इस जंगल की कुटिलता यह है कि वह कभी-कभार कुछ लोगों को अच्छे अवसर भी प्रदान कर देता है। इससे जंगल वासी पूरी तरह अपना मोहभंग नहीं कर पाते। वे सक्रिय होते हैं, उछल-कूद करते हैं, एक-दूसरे को कटते हैं, (जंगल का मालिक वर्ग अपना काम कर रहा होता है) हाँफते हैं, थकते हैं, निराश होते हैं, माथा ठोककर रह जाते हैं और भाग्य का खेल समझकर सो जाते हैं। अमरकांत के पात्रों का बार-बार पशु-पक्षियों जैसा आचरण करना इस मानव-जंगल के कारण है। उनकी मानवता उनके जंगल से टकराती है। किसी क्रान्तिकारी परिवर्तन के आभाव में प्राय: जंगल ही जीतता है। अमरकांत के पात्र स्थितियों से निराश होकर अंत में खामोश और पस्त हो जाते हैं। जैसे पशु-पक्षी कटघरे में से बाहर निकलने की अपार छटपटाहट के बाद असफल होकर सो जाएँ।''9

निष्कर्षत : अमरकांत प्रतीक-प्रयोग में सबसे विशिष्ट हैं। उनके प्रतीक चिर परिचित और अचरज में डालने वाले हैं। उनकी कहानियों के शीर्षक, पात्र, पात्र की चेष्टाएँ, स्थिति सभी प्रतीकात्मक हैं। इनके सहारे वे उस अमानवीय व्यवस्था पर चोट करते हैं, जिसमें रहकर पशु-पक्षी जैसा जीवन जीने की विवशता है। प्रतीकों के प्रयोग से उनकी भाषा व्यंजना शक्ति से परिपूर्ण हो गयी है। विलक्षण प्रतिभा से परिपूर्ण अमरकांत मानव जीवन के सिद्धहस्त चित्रकार हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या-231, 2. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या-502, 3. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, दूसरा खंड, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या-55, 4. वही, पृष्ठ संख्या-55, 5. वही, पृष्ठ संख्या-55, 6. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या-70-75, 7. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, दूसरा खंड, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या-15, 8. अमरकांत की सम्पूर्ण कहानियाँ, पहला खंड, प्रथम संस्करण 2013, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ, पृष्ठ संख्या-140 9. वर्ष -1, संपादक- रवीन्द्र कालिया, ममता कालिया एवं नरेश सक्सेना, इलाहबाद प्रेस, संस्करण - 1977

सुलोचना कुमारी, शोध-छात्रा, पटना विश्वविद्यालय, पटना

ख़ामोश लम्हों का सफ़र-बंधनों को तोड़ता हुआ एक सफ़र

''न चंचल खेल जवानी के न प्यार की अल्हड़ घातें थीं
बस राह में उनका मिलना था या फ़ोन पे उनकी बातें थीं
इस इश्क़ पे हम भी हंसते थे बेहासिल सा बेहासिल था
इस ज़ोर बिफरते सागर में ना कश्ती थी ना साहिल था
जो बात थी इनके जी में थी जो भेद था यकसर अनजाना
इस बस्ती के इक कूचे में इक इंशा नाम का दीवाना
इक नार पे जी को हार गया मशहूर है उसका अफ़साना''

संजय कुमार 'कुन्दन'

उपन्यास में कुछ डामाई मोड़ भी हैं-एक पति का अपनी बेवफ़ा पत्नी और उसके प्रेमी के प्रति तात्कालिक गुस्सा और नफ़रत भी है। लेकिन सारे उपन्यास में अतृप्त नायक की एक बेचैनी है जो पाठक को छूए बिना नहीं रह सकती। प्रेम तो कविता ही है, इसलिए इस उपन्यास की भाषा कवितात्मक है।

इब्ने इंशा की इस नज़्म जैसी ही कुछ अव्याख्यायित, अनबूझी सी प्रेम कहानी है नीलांशु रंजन के सद्यप्रकाशित उपन्यास ''ख़ामोश लम्हों का सफ़र'' में । सामाजिक परंपरा को तोड़ती हुई एक विवाहेतर प्रेम की कहानी, जहां भावनात्मक स्वतंत्रता के हमराह वैवाहिक जीवन की मान्यताओं का बंधन भी अपनी आधिकारिक उपस्थिति के साथ चल रहा है। उपन्यास में बहुत ही गिनेचुने पात्र हैं-जिनमें नायक अंकित और नायिका अन्नी ही सारे उपन्यास के अधिकतर हिस्सों में पाठकों के साथ संवादरत हैं। अंकित की पत्नी बब्बी और

अन्नी के पति रमेश आनंद आवश्यकता भर ही पाठकों के सामने आते हैं। ज़ाहिर है अंकित और अन्नी के बीच बिना किसी तर्क के एक ज़बरदस्त आपसी आकर्षण है जो एक परिभाषाविहीन प्रेम की सीमाओं को छूता है, जहां दोनों जीवन की व्यस्तताओं और समाज की खोजी नज़रों से चुराए हुए कुछ क्षणों में आपसी साहचर्य में आह्लादित होते हैं वहीं प्रेम के संभाषणों की पृष्ठभूमि में एक अपराधबोध की छाया भी मंडराती रहती है। और शायद यही कारण है कि दैहिक आकर्षण के बावजूद इस प्रेम में देह अनुपस्थित है। हरिवंश राय बच्चन पर शोध कर रही अन्नी और शायर और पत्रकार अंकित साहित्य के ज़बरदस्त आकर्षण में दिखते हैं और शायद इसलिए विवाहेतर प्रेम की तमाम प्रत्यक्ष अनैतिकताओं के बावजूद वे प्रेम की मूलभूत शालीनता को अपनी बातचीत में भी लांघ नहीं पाते।

उपन्यास में कुछ डामाई मोड़ भी हैं–एक पति का अपनी बेक़ा पत्नी और उसके प्रेमी के प्रति तात्कालिक गुस्सा और नफ़रत भी है। लेकिन सारे उपन्यास में अतृप्त नायक की एक बेचैनी है जो पाठक को छूए बिना नहीं रह सकती। प्रेम तो कविता ही है, इसलिए इस उपन्यास की भाषा कवितात्मक है। फिर भी संवाद साधारण बोलचाल की भाषा के ही हैं और संवादों और गतिविधियों में मध्यमवर्गीय जीवन की स्पष्ट छाप दिखलाई पड़ती है।

उपन्यास का क्लाइमेक्स नाटकीय है जो शायद किसी वर्जनाहीन प्रेम को अमर बनाने के लिए आवश्यक था। आज के कठिन दौर में जहां वैयक्तिक अभिव्यक्ति और प्रेम पर गहरा संकट छाया हुआ है, शुरू से अंत तक भावनाओं में डूबा यह उपन्यास हमारी उमस भरी ज़िन्दगी में एक शीतल बयार की तरह है जिसे पाठकों के प्रेम की आवश्यकता है।

संजय कुमार 'कुन्दन'

विश यू स्पीडी रिकवरी

मदन गुप्ता सपाटू

कई बार हालचाल पूछने वाले ज्यादा ही धार्मिक प्रवृति के इसलिए आ जाते हैं ताकि उनके ऐसे समय में भी कोई समय कटवाने वाला प्राप्त हो जाए। वे आत्मा - परमात्मा के मिलन, गीता, रामायण, वेद उपनिषद की यात्रा करवाते हुए गरुड़ पुराण के स्टेशन पर पूरे परिवार को भटका कर अपना रास्ता नापते हुए आशीर्वचन दे जाते हैं- बेटा, पापा का ख्याल रखना, सेवा में कोई कमी न रखना।

हमारे देश में मरीज का हालचाल पूछने अस्पताल में जाना एक रिचुअल माना जाता है। इसलिए जाना पड़ता है कि वहाँ एक गुप्त अटेंडेस रजिस्टर होता है जिसका कनैक्शन सभी व्हाट्स एप ग्रुप से लिंक्ड होता है। जो गया और जो नहीं गया उसका विवेचन फिर घर-घर संभव हो जाता है।

हर देश में हाल पूछने का अपना अपना स्टाइल है।

अमेरिकन जब किसी बीमार को देखने जाता है तो कहता है- गैटट् वैल्ल सून।

ब्रिटिश मूल का व्यक्ति कहेगा- विश यू ए स्पीडी रिकवरी।

जब हिन्दुस्तानी जाता है तो चाय पर हैल्थ की चर्चा करता है, अपनी बीमारी बताता है, अस्पतालों की लूट, डाक्टरों की धुनाई का वीडियो अपने मोबाइल पर दिखाता है, मेडीकल हैल्थ इंश्योरेंस और लाइफ इंश्योरेंस के सारे प्लान बताता है।

आपका हालचाल पूछते हुए, वह नाना-नानी, दादा-दादी के सारे सेल्फ टैस्टिड, मुहल्ला, टैस्टिड नुस्खों की हिडन फाइलें अपने मोबाइल से खोल देता है। वह बीमार की तीमारदारी के लिए गया था इसलिए, प्रूफ के लिए सेल्फी लेना नहीं भूलता। नर्स वर्स ऐसे

वातावरण में यदि फोटोजनिक हो तो ईंस्टाग्राम में और चार चांद लग जाते हैं। फेस बुक पर डालने से लाईक के कमेंट और स्पीडी रिकवरी के मैसेज आने लगते हैं। कई बार यह समझ नहीं आता कि पूरी पिक में लाइक किसका बनता है। मरीज का, नर्स का या तीमारदार का?

मरीज का हाल चाल पूछते पुछाते कई सुझाव आटो मोड पर चलने लगते हैं। रामदेव के अनुलोम विलोम, श्री श्री की सुदर्शन क्रिया, युनानी, अफगानी, आयुर्वेदिक, होमयोपैथी, एक्युप्रशर, ऐक्युपंक्चर, नेचुरोपैथी, बाबाओं, पीरों फकीरों के दर्शनों से लेकर गूगल के लेटेस्ट आविषकार तक सभी एक सिटिंग में ही डिस्कस हो जाते हैं। यदि कोई फैमिली का बंदा बैठा है तो वह उसकी बीमारी का नाम और दवाईयों की ऐसी वेरायटी बताएगा कि यदि आप इस चक्कर में बोलने की कोशिश करें कि आप का भी मेडीकल नालेज से बहुत गहरा रिश्ता है तो ऐसा महसूस होगा कि कि आप की जीभ को मंडूक आसन करना पड़ा और जुबान को पैरालिसिस होते होते बचा।

कई बार हालचाल पूछने वाले ज्यादा ही धार्मिक प्रवृति के इसलिए आ जाते हैं ताकि उनके ऐसे समय में भी कोई समय कटवाने वाला प्राप्त हो जाए। वे आत्मा - परमात्मा के मिलन, गीता, रामायण, वेद उपनिषद की यात्रा करवाते हुए गरुड़ पुराण के स्टेशन पर पूरे परिवार को भटका कर अपना रास्ता नापते हुए आशीर्वचन दे जाते हैं- बेटा, पापा का ख्याल रखना, सेवा में कोई कमी न रखना। यह कहना भी नहीं भूलते कि जब रात बिरात एंमरजेंसी पड़े तो बताने में संकोच न करना। कई महानुभाव बड़े ही ज्योतिषी नुमा और आशावादी प्रवृत्ति के होते हैं जो रुखसत होने से पहले अपनी फैमिली हिस्ट्री बताना नहीं भूलते - मेरे सगे फूफा के पापा भी इसी बीमारी से भगवान को प्यारे हुए थे।

अब बीमार की मर्जी कि इसी अस्पताल में पड़ा रहे या पीछा छुड़वाए या गरुड़ पुराण में दिए गए, स्वर्ग-नर्क के कैलेंडर के सीन देख देख कर अपने कर्मों की बैलेंस शीट का विवेचन करे। या स्पीडी रिकवरी या 'गेटट् वैल्ल सून' के कार्ड और फूलों के बुके मोबाइल पर देख देख कर ही ठीक ठाक घर आ जाए!

मदन गुप्ता सपाटू, 196 सैक्टर 20ए, चंडीगढ़
मो. : 9815619620, ई-मेल : sapatu196@gmail.com

छः ग़ज़लें

शिवनारायण

(1)

दिल में आता रहे और जाता रहे
रूठ जाए मगर मुस्कुराता रहे

एक अना के लिये क्या जरूरी है ये
दिल जमाने को अक्सर दिखाता रहे

नाम दिल में तेरा इस तरह रख लिया
अक्स तेरा ही आँखों में आता रहे

चाहकर भी जिसे भूल पाया नहीं
बनके जुगनू वही झिलमिलाता रहे

क्या जरूरत मुझे इस नए दौर में
कोई आता रहे कोई जाता रहे

कोई इल्जाम "शिव" पर लगा दीजिए
उम्र भर दाग अपना छुड़ाता रहे

(2)

धूप जैसे ढलानों पे जाने लगी
मेरी साँसों में खुशबू सी आने लगी

बदमिज़ाजी सियासत की इतनी बढ़ी
आग अपने ही घर में लगाने लगी

रोशनी तेज़ जब भी हुई चाँद की
गम की नींदों से मुझको जगाने लगी

जिन्दगी का तमाशा जरा देखिए
दिल जलाकर गज़ल गुनगुनाने लगी

फिर हुकूमत अमावश में "शिव" रात भर
थपकियाँ देके मुझको सुलाने लगी

✧ ✧ ✧

(3)

झूठ सच का हिसाब भी होता
अपने हिस्से में ख्वाब भी होता

खत लिखा था उसे मुहब्बत से
कम से कम उसका जवाब भी होता

भर गये जुल्म के पियाले सब
अब कोई इन्कलाब भी होता

तेरा चेहरा जो आईना है तो
कोई दिल की किताब भी होता

लोग मुड़-मुड़ के देख लेते यूँ
'शिव' का चेहरा गुलाब भी होता।

(4)

तिनका-तिनका बोझ उठाना सीख रहा है
एक परिंदा काम चलाना सीख रहा है

वह बच्चा जो उठता है फिर गिरता है
अपने घर तक आना-जाना सीख रहा है

क्या होता है ज़ख्मों पर उंगली सहलाना
धीरे-धीरे ज़ख्म दबाना सीख रहा है

कदम-कदम पर पूछ रहा है रहबर रस्ता
जैसे वह बनकर अनजाना सीख रहा है

''शिव'' क्या जाने दुनिया की चालाकी को
धूर्त समय का यह अफ़साना सीख रहा है

(5)

गम नये हैं कमाल हो जाए
खुद से खुद ही सवाल हो जाए

जुल्म इतना बढ़ा है दुनिया में
अब इसका उछाल हो जाए

सीधे चलना भी क्या जरूरी है
कुछ तो टेढी सी चाल हो जाए

हौसला इस तरह रहे दिल में
अपनी मुश्किल का ढाल हो जाए

'शिव' तमाशा नहीं जमाने का
इसका अपना भी हाल जो जाए!

(6)

कौन मुझे सपनों में रोज बुलाता है
एक नयी दुनिया की राह दिखाता है

आना-जाना उसका एक तमाशा था
क्यों अपना दिल कोई ख्वाब सजाता है

मैं उसको देखूं तो आखिर कैसे भी
दूर हवा में जाकर वो मुस्काता है

हँसने रोने की चालाकी ठीक नहीं
तन्हाई का रंग समझ में आता है

अपनों के बारे में 'शिव' क्या बतलायें
अपना ही तो जुल्म हमेशा ढ़ाता है।

शिवनारायण

कातिल निगाहों को उठाइए जरा

ये बच्चा सच बहुत बोलता है, यहाँ जी नहीं पाएगा
जमाने के मुताबिक इसे झूठ भी सिखलाइए जरा

बेशुमार खुशी बयाँ कर दी सरे-महफिल आपने
हर एक खुशी में छिपा दर्द भी दिखलाइए जरा

ये सारे नए वायदों की सरकार है मेरे हुजूरे-वाला
एक बार वोट देके देखिए, फिर मुस्कुराइए जरा

कब तक दूसरों के भरोसे इंकलाब लाई जाएगी
गर जुल्म हुआ है तो खुद ही शोर मचाइए जरा

आप बुजुर्गों की बस्ती में हैं, इतना तो कीजिए
वो कहें कि बहुत हो चुका तो रूक जाइए जरा

कौन कहता है कि अब आपका हुस्न काम का नहीं
आप अपनी कातिल निगाहों को उठाइए जरा

सलिल सरोज, बी–302, तीसरी मंजिल, सिग्नेचर, व्यू अपार्टमेंट, मुखर्जी नगर
मो. : 9968638267

✧ ✧ ✧

महात्मा गाँधी के जन्म के 150वें वर्ष पर बालकविता संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन

डॉ. वेद मिश्रा शुक्ल

इस दौरान उल्लेखनीय कार्य करने वाले संस्थान से जुड़े शिक्षकों और विद्यार्थियों को भी राज्यपाल द्वारा सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में थानेसर से विधायक सुभाष सुधा, संस्थान के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ गोविंद प्रसाद शर्मा, सचिव अवनीश भटनागर, निदेशक डॉ रामेन्द्र सिंह, डॉ ललित बिहारी गोस्वामी, सविता सेठ, विजय कुलकर्णी, कौशलेश उपाध्याय सहित पूरे देश भर से आए हुए शिक्षाविद व साहित्यकार प्रतिनिधि उपस्थित रहे।

कुरुक्षेत्र (हरियाणा), 25 नवम्बर। विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान द्वारा त्रिदिवसीय सांस्कृतिक महोत्सव का आयोजन संस्थान के अखिल भारतीय केंद्रीय भवन के सभागार में 23 से 25 नव. तक आयोजित किया गया। महोत्सव में तीसरे दिन हिमाचल प्रदेश के महामहिम राज्यपाल आचार्य देवव्रत जी मुख्यअतिथि के रूप में उपस्थित रहे। इस अवसर पर राज्यपाल द्वारा महात्मा गांधी जी के जन्म के 150वें वर्ष पर संस्थान से प्रकाशित बाल साहित्यकार डॉ वेद मित्र शुक्ल का बाल कविता-संग्रह ''बापू से सीखें'' का विमोचन किया गया। ज्ञात हो कि अगस्त 2017 में साहित्य सृजन पीठ (इंदौर) एवं संस्कृति शिक्षा संस्थान (कुरुक्षेत्र) के संयुक्त तत्वावधान में इंदौर में आयोजित सौद्देश्य बालसाहित्य निर्माण कार्यशाला के दौरान आमंत्रित सौद्देश्य रचित बालसाहित्य में से चयनित कृतियों में से यह एक है। इस अवसर पर महामहिम आचार्य देवव्रत ने संस्कृति को किसी भी देश की आत्मा बताते हुए कहा कि भारतीय संस्कृति का आधार धर्म है। यह मनुष्य के व्यहवार में परिलक्षित होना आवश्यक है। इस हेतु एक राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता होती है। जो ऐसे राष्ट्रभक्त युवाओं का निर्माण कर सके कि वे सभी प्रकार की चुनौतियों का सामना सफलतापूर्वक कर सकें। विद्या भारती इसी कार्य में प्राण प्रण से समर्पित है। इस संबंध में संस्थान द्वारा महापुरुषों से जुड़े साहित्य का

प्रकाशन कार्य एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। इस दौरान उल्लेखनीय कार्य करने वाले संस्थान से जुड़े शिक्षकों और विद्यार्थियों को भी राज्यपाल द्वारा सम्मानित किया गया। कार्यक्रम में थानेसर से विधायक सुभाष सुधा, संस्थान के राष्ट्रीय अध्यक्ष डॉ गोविंद प्रसाद शर्मा, सचिव अवनीश भटनागर, निदेशक डॉ रामेन्द्र सिंह, डॉ ललित बिहारी गोस्वामी, सविता सेठ, विजय कुलकर्णी, कौशलेश उपाध्याय सहित पूरे देश भर से आए हुए शिक्षाविद व साहित्यकार प्रतिनिधि उपस्थित रहे।

डॉ. वेद मित्र शुक्ल, अंग्रेजी विभाग, राजधानी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली–110015, मो. : 9599798727

श्री विनोद बब्बर को सौहार्द सम्मान

गत दिवस लखनऊ में आयोजित समारोह में उ.प्र. विधानसभा के अध्यक्ष श्री हृदय नारायण दीक्षित और उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष डा. सदानंद गुप्त ने वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार श्री विनोद बब्बर को सौहार्द सम्मान प्रदान किया। इस सम्मान में उन्हें ताम्रपत्र, अंगवस्त्रम् और दो लाख रुपये की राशि भेंट की गई।

भारतीय भाषाओं के प्रबल समर्थक श्री विनोद बब्बर की मातृभाषा हिंदी नहीं है लेकिन उनका साहित्य हिंदी में ही हुआ है। उनकी 20 पुस्तकें प्रकाशित है। कुछ का विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद भी हुआ। उनके साहित्य पर अब तक देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में पांच शोध कार्य हो चुके हैं तो कुछ जारी हैं।

डा. सदानंद गुप्त, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान के कार्यकारी अध्यक्ष
श्री हृदय नारायण दीक्षित, उ.प्र. विधानसभा के अध्यक्ष
श्री विनोद बब्बर, वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार

✧ ✧ ✧

आदरणीय संपादक महोदय,

साहित्य यात्री मुझे मोह लिया। संपूर्ण पत्रिका को मैंने पढ़ लिया। आलोचना का अंश आलोचकों के ऊपर छोड़ दिया। एक पाठक के रूप में मुझे डा. इंद्र कांत झा रचित 'इंद्र दिव्यांजलि' कविता अत्याधिक आकर्षित किया। कई अन्य पाठकों ने भी मुक्त कंठ से इस कविता कि प्रशंसा की। कुछ वरिष्ठ नागरिक जिन्हें पत्रिका कि प्रति उपलब्ध नहीं हो सकी उन्होनें छायाप्रति कराकर इसे पढ़ा। भवसागर से पार उतरने का सहज उपाय पुरे सौन्दर्य के साथ कविता में व्याख्यायित है। लेखकों को धन्यवाद देख कर प्रस्तुत हूँ।

राधा रमन झा

महानुभाव,

साहित्य यात्रा वर्ष-4, अंक-15, अप्रैल-सितम्बर, 2018 (संयुक्तांक) के अवलोकन का अवसर पाकर कृतकृत्य हुआ। चयन, विभाजन एवं सम्पादकीय दृष्टि की तीक्ष्णता से संपुटित पत्र की सामग्रियाँ अत्यंत ही आहलादक एवं लोकरंजन के साथ ही लोकशिक्षण की विशिष्ट सामग्रियाँ प्रतीत हुई। अवश्य ही पत्रिका नहीं केवल अवलोकनीय एवं माननीय है अपितु मानक दृष्टि से भी मार्गदर्शक प्रतीत हुआ है। ऐतिहासिक सन्दर्भों से संपुष्ट आलेखों, सुविचारित समीक्षा परक निबन्धों एवं मौलिक लेखन में कथा, कविता, रिपोर्ट आदि के समागम ने पत्रिका की ग्राहयता, पठनीयता एवं शिक्षण सामर्थ्य को आलोकित किया है जिसके लिये सम्पादक-मण्डल बधाई के पात्र हैं। करूणा के आवेग की दृष्टि से 'उतरती नहीं है धूप', अन्धाधुन्य विकास के पीछे छिपी भ्रष्टता एवं विनाश की साकार प्रतिच्छवि की दृष्टि से 'वाराणसी में गिरता पत्थर' कविताएँ जहाँ मानव के सनातन चिन्तन पद्धति एवं वर्तमान की चिन्ता का निदर्शन है तो 'इन्द्र दिव्यांजलि' के प्रत्येक खण्ड ने मानव जीवन के सत्य के अन्वेषण की दिशा निर्देशित कर भारतीय दर्शन की गहराइयों की ओर इंगित किया है। ऐसे ही मौलिक लेखनों ने पत्रिका की मर्यादा में चार चाँद लगा दिये हैं। पुनः पुनः धन्यवाद, साधुवाद, बधाइयाँ। निरन्तरता विचलित न हो, दक्षता बढ़ती चले, लोकमंगल का पथ प्रशस्त करने में यह 'साहित्य यात्रा' युगस्रष्टाका अभिनय करता रहे, यही मेरी शुभकामना है।

योगानन्द झा
कबिलपुर, लहेरियासराय, दरभंगा-846001, (बिहार)
मो० : 09334493330

श्रद्धांजलि

हिन्दी के अप्रतिम कथाकार और पत्रकार
हिमांशु जोशी का विगत 23 नवम्बर को निधन हो गया।
जोशी जी के साथ मेरी कई स्मृतियाँ जुड़ी हैं।
वे प्रेम, प्रकृति, अंचल और संवेदना को
रूपायति करने वाले रचनाकार थे।
साहित्य यात्रा परिवार उनके प्रति गहरी संवेदना अर्पित करती है।

साहित्य यात्रा के संपादक प्रो. कलानाथ मिश्र के साथ
कथाकार एवं पत्रकार हिमांशु जोशी, एक अविस्मरणीय पल

RNI No. : BIHHIN06272
ISSN 2348 - 1896
Postal Registration No. : PT-7C

श्रद्धांजलि

श्री रंजन सूरिदेव

विलक्षण प्रतिभा के धनी, 'साहित्य यात्रा' के सलाहकार तथा संस्कृत, पाली प्राकृत, अपभ्रंश और हिंदी के विद्वान आचार्य श्री रंजन सूरिदेव का 94 वर्ष की आयु में विगत 12 नवम्बर को देहावसान हो गया। उन्होंने बौद्ध- जैन आचार्यों और प्राकृत में भी काम किया। आचार्य श्रीरंजन सूरिदेव साहित्य और कला के शलाका पुरुष थे। उन्होंने शोध त्रैमासिकी 'परिषद पत्रिका' का संपादन कर हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में एक मानक का निर्माण किया।

उनके देहावसान से साहित्य यात्रा को गहरा आघात पहुँचा है। साहित्य यात्रा परिवार की ओर से आचार्य सूरिदेव को विनम्र श्रद्धांजलि।

Design & Print @ Gyan Ganga Creations